‘शव काटनेवाला आदमी’ उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

‘SHAV KATNEWALA AADAMI’ UPANYAS KA
AALOCHANATMAK ADHYAYAN

[मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल के हिन्दी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.)
की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध]

बरबी ललबियाकसाङी साइलो

BARBIE LALBIAKSANGI SAILO

MZU Regd. No. 1904973

M.Phil. Regd. No. MZU/M.Phil./622 of 29.05.2020

हिन्दी विभाग

शिक्षा एवं मानविकी संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF EDUCATION AND HUMANITIES

अक्टूबर, 2021

OCTOBER, 2021

‘शव काटनेवाला आदमी’ उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

‘SHAV KATNEWALA AADAMI’ UPANYAS KA
AALOCHANATMAK ADHYAYAN

प्रस्तुतकर्ता

बरबी ललबियाकसाङी साइलो
हिन्दी विभाग

BARBIE LALBIAKSANGI SAILO
Department of Hindi

शोध-निर्देशक

डॉ. अमिष वर्मा
हिन्दी विभाग

Dr. Amish Verma
Department of Hindi

मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल के शिक्षा एवं मानविकी संकाय के अंतर्गत
हिन्दी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के
लिए अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध

Submitted in partial fulfilment of the requirement of the degree of Master of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

डॉ. अमिष वर्मा
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय
आइजोल -796004

केंद्रीय विश्वविद्यालय
A Central University
(Accredited by NAAC with 'A' Grade)

Dr. Amish Verma
Assistant Professor
Department of Hindi
Mizoram University,
Aizawl-796004

Mobile No.: 09436334432 / 09774009181; E-mail: amishjnu@gmail.com; Website: www.mzu.edu.in

दिनांक: .10.2021

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **बरबी ललबियाकसाङी साइलो** ने मेरे निर्देशन में मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल की **मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.- हिन्दी)** की उपाधि हेतु **' 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन'** विषय पर शोध-कार्य किया है। प्रस्तुत शोध कार्य शोधार्थी की अपनी निजी गवेषणा का फल है। यह इनका मौलिक कार्य है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध या इसके किसी भी अंश को किसी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी प्रकार की उपाधि हेतु अद्यावधि प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल की **मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.- हिन्दी)** की उपाधि हेतु मूल्यांकन के लिए प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

(डॉ. अमिष वर्मा)
शोध-निर्देशक

हिन्दी विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय
आइजोल

अक्टूबर, 2021

घोषणा पत्र

मैं **बरबी ललबियाकसाङी साइलो** एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध की विषय-सामग्री मेरे द्वारा किए गए शोध-कार्य का सुपरिणाम है। इस शोध-सामग्री के आधार पर न तो मुझे और जहाँ तक मुझे ज्ञात है, न किसी अन्य को कोई उपाधि प्रदान की गई है और न ही यह लघु शोध-प्रबंध मेरे द्वारा कोई अन्य उपाधि प्राप्त करने के लिए किसी अन्य विश्वविद्यालय या संस्थान में प्रस्तुत किया गया है। इस लघु शोध-प्रबंध लेखन के दौरान जिन ग्रंथों की सहायता ली गयी है, उसे समुचित रूप से उद्धृत किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल के सम्मुख हिन्दी विषय में **मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.- हिन्दी)** की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

(बरबी ललबियाकसाङी साइलो)
शोधार्थी

(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)
अध्यक्ष

(डॉ. अमिष वर्मा)
शोध-निर्देशक

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
भूमिका	**i - iii**
अध्याय-1 **येशे दोरजी थोंगछी: जीवन और साहित्य** 1.1 येशे दोरजी थोंगछी का जीवन 1.2 येशे दोरजी थोंगछी की साहित्य-यात्रा	**1 - 23**
अध्याय- 2 **मनपा समाज और संस्कृति का परिचय**	**24 – 52**
अध्याय- 3 **शव काटनेवाला आदमी : संवेदना के विविध आयाम** 1.1 मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति 1.2 शव काटने की प्रथा: उपन्यास का केंद्रीय विषय 1.3 उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप 1.4 दलाई लामा का भारत आगमन 1.5 भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज	**53 – 91**
अध्याय- 4 **'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का शिल्प** 1.1 भाषा 1.2 कथा शिल्प	**92 – 116**
उपसंहार	**117 – 122**
परिशिष्ट **येशे दोरजी थोंगछी का साक्षात्कार**	**123 – 126**
संदर्भ ग्रंथ सूची	**127 – 132**
बायो डाटा	
अनुसंधित्सु का विवरण	

भूमिका

उपन्यास आधुनिक युग की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। उपन्यासकार इस साहित्यिक विधा द्वारा अपने विचारों की रचनात्मक अभिव्यक्ति करता है। उपन्यास में जीवन की सम्पूर्णता का चित्रण होता है। मानव जीवन से जुड़े विभिन्न प्रसंगों को कथानक का आधार बनाकर उपन्यास का ताना-बाना बुना जाता है।

येशे दोरजी थोंगछी के उपन्यासों में सुगठित कथावस्तु दिखाई पड़ती है। वे एक संवेदनशील रचनाकार हैं। अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाजों के यथार्थ का उन्हें गहरा अनुभव है, जिसे उन्होंने बहुत ही कलात्मक ढंग से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के लिए चयनित येशे दोरजी थोंगछी का उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' भी अरुणाचल प्रदेश के मनपा समाज को केंद्र में रखकर लिखा गया है।

पूर्वोत्तर के साहित्य से मैं हमेशा से एक जुड़ाव महसूस करती रही हूँ। मेरे लघु शोध-प्रबंध का विषय है –' 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन'। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास एक नए ढंग के विषय पर लिखा गया उपन्यास है और इस उपन्यास पर शोध कार्य भी बहुत कम हुए हैं। इसी कारण मैंने एम.फिल. के लघु शोध-प्रबंध के लिए इस उपन्यास का चयन किया।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को अध्ययन की सुविधा के लिए चार अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय 'येशे दोरजी थोंगछी: जीवन और साहित्य' है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम उप-अध्याय 'येशे दोरजी थोंगछी का जीवन' के अंतर्गत येशे दोरजी थोंगछी के जन्म, शिक्षा, गृहस्थ जीवन, नौकरी एवं सम्मान-पुरस्कार आदि का विस्तार से उल्लेख किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय 'येशे दोरजी थोंगछी की

साहित्य-यात्रा' के अंतर्गत उनके उपन्यास-साहित्य, कहानी-संग्रह आदि का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय 'मनपा समाज और संस्कृति का परिचय' है। इस अध्याय के अंतर्गत मनपा जनजाति की सामाजिक पृष्ठभूमि एवं सांस्कृतिक परिदृश्य को रेखांकित किया गया है।

तृतीय अध्याय 'शव काटनेवाला आदमी: संवेदना के विविध आयाम' है। इस अध्याय को पाँच उप-अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम उप-अध्याय 'मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति' के अंतर्गत उपन्यास में अभिव्यक्त मनपा समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को रेखांकित किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय 'शव काटने की प्रथा: उपन्यास का केंद्रीय विषय' के अंतर्गत उपन्यास में अभिव्यक्त मनपा समाज के मृत्यु संस्कार, शव काटने की प्रथा आदि को विवेचित किया गया है। तृतीय उप-अध्याय 'उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप' के अन्तर्गत उपन्यास में निहित प्रेम संबंधी मूल्यों तथा प्रेम के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। चतुर्थ उप-अध्याय 'दलाई लामा का भारत आगमन' के अंतर्गत उपन्यास में अभिव्यक्त दलाई लामा के तिब्बत छोड़कर भारत आने की घटना और उससे मनपा समाज के संबंध का विश्लेषण किया गया है। पंचम उप-अध्याय 'भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज' के अन्तर्गत उपन्यास के आधार पर भारत-चीन युद्ध एवं उससे मनपा समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित किया गया है।

चतुर्थ अध्याय ''शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का शिल्प' है। इस अध्याय के अन्तर्गत दो उप-अध्याय हैं। प्रथम उप-अध्याय 'भाषा' के अन्तर्गत उपन्यास की भाषा और

अनुवाद की भाषा का विश्लेषण किया गया है। द्वितीय उप-अध्याय 'कथा-शिल्प' के अन्तर्गत उपन्यास के शिल्प और संरचना तथा उपन्यास में प्रयुक्त विभिन्न प्रविधियों को सोदाहरण विश्लेषित किया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत विभिन्न अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों का समाहार एवं समाकलन किया गया है।

इस शोध कार्य को पूरा करने में जिन लोगों से मुझे सहयोग और संबल मिला, उन सभी के प्रति हृदय से आभार प्रकट करती हूँ। मैं अपने शोध निर्देशक डॉ. अमिष वर्मा को हृदय से प्रणाम करती हूँ, जिनके निर्देशन और प्रोत्साहन से ही इस लघु शोध-प्रबंध को आकार देना सम्भव हो पाया है।

हिन्दी विभाग के प्रो. संजय कुमार, प्रो. सुशील कुमार शर्मा, डॉ. सुषमा कुमारी एवं डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ, जिनसे मुझे हमेशा सत्यपरामर्श मिलता रहा है।

अंत: में मैं उन सभी विद्वानों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी पुस्तकों एवं आलेखों से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मुझे सहयोग मिला।

20 अक्टूबर, 2021 **बरबी ललबियाकसाङी साइलो**

मिजोरम विश्वविद्यालय

आइजोल

अध्याय-1

येशे दोरजी थोंगछी: जीवन और साहित्य

1.1 येशे दोरजी थोंगछी का जीवन

1.2 येशे दोरजी थोंगछी की साहित्य-यात्रा

1.1 येशे दोरजी थोंगछी का जीवन

येशे दोरजी थोंगछी का असमिया उपन्यास के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। अरुणाचल की जनजातीय संस्कृति, रीति-रिवाज और व्यवहार आदि उनकी सभी रचनाओं के केंद्र में है। अरुणाचल की जनजातियों की विशेषताओं को उनकी रचनाओं में चिह्नित किया गया है। थोंगछी जी आदिवासी पहचान की निर्मिति की सामाजिक प्रक्रिया के प्रति जागरूक हैं। अरुणाचली पहचान के विकास के लिए उनकी चिंता उनकी रचनाओं में प्रकट होती है।

थोंगछी मूलत: असमिया भाषा में लिखते हैं। अरुणाचल की एक कवयित्री और राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, ईटानगर में सहायक आचार्य डॉ. जमुना बीनी तादर अपने एक लेख में बताती हैं कि "वे (येशे दोरजी थोंगछी) मूलत: असमिया भाषा में लिखते हैं। बचपन से उनका साहित्यिक रुझान था। अपने स्कूली दिनों से ही उन्होनें लिखना आरंभ किया। कविता, नाटक आदि से उन्होंने साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया और तत्पश्चात कहानी एवं उपन्यास लेखन की ओर अग्रसर हुए।"[1]

येशे दोरजी थोंगछी का जन्म 13 जून,1952 को अरुणाचल प्रदेश के वेस्ट कामेंग जिले में स्थित 'जिगाँव' नामक गाँव में हुआ। उनकी माता का नाम स्व. रिनचिन चोजोम थोंगछी एवं पिता का नाम स्व. पूनचू थोंगछी था। येशे दोरजी थोंगछी अरुणाचल की 'शेरदुकपेन' जनजाति से ताल्लुक रखते हैं। उनकी पत्नी श्रीमती सोनामती थोंगछी न्यीशी जनजाति की महिला हैं। इनके तीन बच्चे हैं, जिनमें दो लड़के और एक लड़की है।

येशे दोरजी थोंगछी की प्रारंभिक शिक्षा उनके गाँव के गवर्नमेंट प्राइमरी स्कूल में हुई। तत्पश्चात उन्होंने गवर्नमेंट हायर सेकेंडरी स्कूल,बोमडिला से इंटरमीडिएट, कॉटन

कॉलेज गुवाहाटी से स्नातक एवं गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी से स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की।

जूरी दत्ता अपनी किताब में थोंगछी जी के जीवन के बारे में लिखती हैं- "येशे दोरजी थोंगछी का जन्म वर्ष 1952 में पश्चिम कामेंग जिले के जिगाँव में हुआ था। बाद में वे आई. ए. एस. अधिकारी के पद पर आसीन हो गए। जैसे-जैसे वे जीवन की यात्रा में आगे बढ़े,उन्होंने कई निकट और प्रिय लोगों का साथ खो दिया। लेकिन वह पूरी आशावादिता के साथ जीवन में आगे बढ़ने में विश्वास रखते हैं।"[2] येशे दोरजी थोंगछी जीवन में आगे बढ़ने के लिए रूढ़ियों से मुक्त होने पर जोर देते हैं। यह थोंगछी जी के उपन्यासों में भी दिखाई पड़ता है।

येशे दोरजी थोंगछी विभिन्न कार्यलयों एवं प्रशासनिक पदों पर कार्य कर चुके हैं। अरुणाचल प्रदेश के सिविल सेवा अधिकारी के रूप में उन्होंने अपने करियर की शुरुआत की और फिर 1992 में उन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा में प्रोन्नत कर दिया गया। उन्होंने पाँच जिलों (तवांग, लोअर सुबनसिरी, चांगलांग, लोहित और पूर्वी कामेंग) में डी.सी.(डिप्टी कमिश्नर) के रूप में लगातार साढ़े बारह वर्षों तक कार्य किया। पर्यटन, शहरी विकास मंत्रालय, परिवहन विभाग एवं नागरिक आपूर्ति जैसे तमाम महत्वपूर्ण विभागों में सचिव के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत गठित अरुणाचल प्रदेश सूचना आयोग के मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में भी इन्होंने अपनी सेवा दी है।

एक प्रशासनिक अधिकारी के तौर पर थोंगछी अरुणाचल के विभिन्न स्थानों में अलग-अलग समय पर कार्यरत रहे। जिन-जिन स्थानों पर उनकी पोस्टिंग होती, वहाँ के जनजीवन में वे पूरी तरह घुलमिल जाते और अपने लेखन के लिए सामग्री जुटा लेते थे।

इसलिए उनके कथा साहित्य में अरुणाचल का जनजातीय समाज, वहाँ की संस्कृति एवं वहाँ का चिंतन-दर्शन प्रामाणिक रूप में अंकित हुआ है। थोंगछी जी का समस्त लेखन उत्तरपूर्वी प्रान्तों, विशेषकर अरुणाचल के जनजातीय समाजों की संस्कृति का प्रामाणिक और जीवंत दस्तावेज है।

येशे दोरजी थोंगछी को उनके साहित्यिक लेखन एवं अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं, जिसका कालक्रमानुसार विवरण इस प्रकार है:

1. **हरिहर चौधरी पुरस्कार- 1971**- असम साहित्य सभा (निबंध प्रतियोगिता में प्रथम स्थान के लिए)
2. **फूलचंद खांदेवाल संगति साहित्य पुरस्कार- 1999**- गोलाघाट साहित्य सभा (लेखन के माध्यम से उत्तर पूर्व क्षेत्र में अखंडता और एकता लाने के लिए)
3. **कलागुरु विष्णु राभा पुरस्कार- 2001**- असम साहित्य सभा (लघु कहानी संग्रह 'पापोर पुखुरी' के लिए, जिसे 1995-2000 की अवधि के दौरान प्रकाशित सर्वश्रेष्ठ असमिया पुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया था।)
4. **साहित्य अकादेमी पुरस्कार-2005**-('मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास के लिए)
5. **भाषा भारती पुरस्कार- 2005**- भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर ('मौन होंठ मुखर हृदय' उपन्यास के लिए)
6. **वासुदेव जलान साहित्य पुरस्कार- 2010**- वासुदेव जलान मेमोरियल ट्रस्ट, गुवाहाटी, असम

7. **विशेष उपलब्धि पुरस्कार (साहित्य)- 2012**- बौद्ध सांस्कृतिक संरक्षण समाज, बोमडिला, अरुणाचल प्रदेश
8. **डॉ. मैदुल इस्लाम बोरा साहित्य पुरस्कार- 2014**- शिवसागर साहित्य सभा
9. **असम-अरुणाचल भूपेन हजारिका सम्मान- पुरस्कार- 2015**- डॉ. भूपेन हजारिका ट्रस्ट, मुंबई और गुवाहाटी
10. **जातीय विद्यालय साहित्य पुरस्कार- 2017**- जातीय विद्यालय संगठन, गुवाहाटी
11. **डॉ. भूपेन हजारिका राष्ट्रीय पुरस्कार- 2017**- सरहद,पुणे, महाराष्ट्र
12. **सादिन-प्रतिदिन गोष्ठी विशेष उपलब्धि (साहित्य और पत्रकारिता) पुरस्कार- 2017**
13. **रंगबंगतेरांग सम्मान पुरस्कार- 2018**- सिनथार प्रकाशन, बोकोलियाघाट, कार्बी-आंगलोंग, असम
14. **असम घाटी साहित्य पुरस्कार- 2017**- विलियमसन मेगोर एजुकेशनल ट्रस्ट, कोलकाता
15. **आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सम्मान-2020**- भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयागराज
16. **सुकाफा पुरस्कार- 2020**- असम सरकार
17. **पद्मश्री- 2020**-भारत सरकार

थोंगछी जी कई सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पर्यावरणीय गतिविधियों के साथ जुड़े रहे हैं। वे अरुणाचल प्रदेश के 'इंडिजीनस फेथ ऐंड कल्चरल सोसाइटी' नामक संस्था के अध्यक्ष भी रहे। मूलनिवासियों की आस्था और धर्म को बढ़ावा देने तथा धर्मांतरण के खिलाफ लड़ने के लिए विभिन्न जनजातियों के बीच अरुणाचल प्रदेश और असम में इस संस्था की 400 से अधिक शाखाएँ हैं। इन्होंने अरुणाचल प्रदेश के पहले

साहित्यिक समाज-'अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी' का गठन किया जो राज्य की साहित्यिक गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ राज्य के युवा और वरिष्ठ लेखकों को एक मंच प्रदान करने का काम करता है। यह संस्था साहित्य अकादमी एवं अन्य साहित्यिक निकायों के सहयोग से साहित्यिक कार्यशाला, संगोष्ठी आदि का आयोजन भी करती है। येशे दोरजी थोंगछी 2006 से उक्त संस्था के अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। इसके अलावा विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों से सक्रिय रूप में जुड़े रहने के साथ-साथ कई सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के सलाहकार भी हैं।

1.2 येशे दोरजी थोंगछी की साहित्य-यात्रा

येशे दोरजी थोंगछी की जितनी ख्याति उपन्यास के क्षेत्र में है, उतनी ही कहानी की क्षेत्र में भी। उन्होंने अपने युग के साहित्य को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया और वर्तमान युग एवं परिवेश को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया। येशे दोरजी थोंगछी के उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के परिदृश्य को, उसके ऊँचे पहाड़ों, घने जंगलों और नदियों के साथ उगते सूरज की भूमि को दर्शाते हैं। उनके लगभग सभी उपन्यास अरुणाचल प्रदेश में रहने वाले मनपा और शेरदुकपेन जनजाति के लोगों की पारंपरिक संस्कृति और जीवन से संबंधित हैं। उनका पहला उपन्यास 'सोनाम' एक पशुपालक जनजाति ब्रोकपा (मनपा का एक वर्ग) से संबंधित है, 'विष कन्यार देशत' पानचेनपा (मनपाओं का एक वर्ग) से संबंधित है, ' लिंगझिक' और 'मिसिंग' शेरदुकपेन जनजाति से संबंधित हैं, 'मौन होंठ मुखर हृदय' शेरदुकपेन और न्यीशी जनजातियों से संबंधित है, 'शव काटनेवाला आदमी' मनपा जनजाति से संबंधित है और अंतिम उपन्यास 'मई आकोउ जनम लम' तिब्बतियों और मनपा जनजाति से संबंधित है। चूँकि थोंगछी जी के सभी उपन्यास अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाजों पर आधारित हैं, उपन्यासकार के पास उपन्यासों में जनजातियों के लोकगीतों को शामिल करने की पर्याप्त गुंजाइश रही। येशे दोरजी थोंगछी के उपन्यासों को करीब से पढ़ने पर पता चलता है कि वे आदिवासी संस्कृति की पूरी दुनिया, उनके सामाजिक रीति-रिवाजों, भौतिक संस्कृति, लोक मान्यताओं, लोक संस्थानों, धार्मिक मान्यताओं, विभिन्न संस्कारों, लोक त्योहारों तथा गीतों और नृत्यों से जुड़े संदर्भों के बारे में बताते हैं। जमुना बीनी तादर अपने लेख में लिखती हैं- "थोंगछी जी का समस्त लेखन उत्तरपूर्वी प्रान्तों के उपेक्षित एवं हाशिए पर पड़े जनजातीय समाजों की निराली संस्कृति का प्रामाणिक दस्तावेज है। उनकी लेखनी से अरुणाचल में रचनात्मक लेखन की नींव पड़ी।

वे न केवल अपने लेखन के द्वारा बल्कि व्यक्तिगत प्रयास से भी प्रदेश के युवाओं को लिखने के लिए प्रेरित व प्रोत्साहित करते रहते हैं... जहाँ तक अरुणाचल के साहित्यिक परिदृश्य की बात है तो यह कहने में कोई संकोच नहीं कि साहित्य लेखन अब भी शैशवावस्था में है। पर थोंगछी जी जैसे रचनाधर्मी व्यक्तित्व के प्रयास से उन्नत साहित्यिक भविष्य की कल्पना की जा सकती है।"[3]

येशे दोरजी थोंगछी के कुल सात उपन्यास और तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है:

उपन्यास

1) सोनाम (मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद भी 'सोनाम' नाम से प्रकाशित)
2) लिंगझिक (असमिया में)
3) मौन ओंठ मुखर हृदय (मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद 'मौन होंठ मुखर हृदय' नाम से प्रकाशित)
4) शव कटा मानुह(मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद 'शव काटनेवाला आदमी' नाम से प्रकाशित)
5) विष कन्यार देशत(असमिया में)
6) मिसिंग (असमिया में)
7) मई आकोउ जनम लम (असमिया में)

कहानी संग्रह

1) पापोर पुखुरी (असमिया में)
2) अन्य एखन प्रतियोगिता (असमिया में)
3) बांह फुलर गोन्ध(असमिया में)

'सोनाम' येशे दोरजी थोंगछी का पहला उपन्यास है, जो 1981 में 'सोनाम' नाम से असमिया में और 2009 में हिन्दी में अनूदित होकर 'सोनाम' नाम से वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। उनका पहला उपन्यास सोनाम ब्रोकपा जनजाति (मनपा जनजाति का ही एक वर्ग) और उस समाज के एक खास रिवाज को केंद्र में रखकर लिखा गया है। ब्रोकपा परिवार में एक महिला को एक से अधिक पुरुषों से शादी करने की सामाजिक अनुमति है। इस अनोखे रिवाज को मोनपा समाज में 'खोरदेपका' कहा जाता है। इस अनोखे रिवाज के कारण मोनपा समाज में प्रभावित होते स्त्री-पुरुष संबंध तथा अंततः स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष को इस उपन्यास के माध्यम से समझा जा सकता है। जमुना बीनी तादर भी अपने लेख में लिखती हैं कि "थोंगछी जी ने अपने उपन्यास (सोनाम) में ब्रोकपा समुदाय के बहुपतिवाद की प्रथा और उससे प्रभावित मानवीय सम्बन्धों के समीकरणों का गहन आकलन किया है।"[4]

अरुणाचल प्रदेश के तवांग और दिरांग जिलों की पृष्ठभूमि में उपन्यास में ब्रोकपा समाज की सांस्कृतिक व्यवस्था, उस समाज की जीवन-शैली, संस्कृति और रीति-रिवाजों का उल्लेख किया गया है, जहाँ स्थानीय लोगों की जीविका का मुख्य आधार पशुपालन (खासकर याक) है। 'सोनाम' उपन्यास की शुरुआत झाकछाम पहाड़ियों से साकतेंग गाँव की ओर अपने घर वापस आ रहे एक मजबूत युवा चरवाहे के वर्णन से होती है। ब्रोकपा जीवन और उसके विवरण को चित्रित करते हुए लेखक कई जनजातीय शब्दों और उस समुदाय के लोगों के पारंपरिक रीति-रिवाजों से हमारा परिचय कराता है।

"ब्रोकपा समाज में स्त्री को एक से अधिक विवाह करने की स्वतंत्रता की बात जानकर ऐसा लगता है जैसे इस समाज में महिलाएँ अधिकार-संपन्न और बहुत हद तक पितृसत्ता के बंधनों से मुक्त हैं, लेकिन उपन्यास से गुजरते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रोकपा समाज भी वास्तव में पुरुष प्रधान समाज ही है।"[5] उपन्यास की नायिका सोनाम के

जीवन की त्रासदी इस बात का प्रमाण है। जूरी दत्ता भी अपनी किताब में इस बात को रेखांकित करती है।

इस उपन्यास में ब्रोकपा समाज पर बौद्ध धर्म के प्रभाव को भी लेखक ने विस्तार से चित्रित किया है। बौद्ध मतावलंबी ब्रोकपा समाज का चित्रण करते हुए यह स्वाभाविक भी है। उपन्यास में पुनर्जन्म पर ब्रोकपा लोगों के विश्वास पर भी विस्तार से चर्चा हुई है। लेखक पारंपरिक मान्यताओं,अंधविश्वासों और सांस्कृतिक पहलुओं का वर्णन करते हुए ब्रोकपा समाज की जीवंत तस्वीर खींचता है।

लिंगझिक (1983) येशे दोरजी थोंगछी का दूसरा असमिया उपन्यास है। यह उपन्यास मूल रूप से शेरदुकपेन जनजाति के एक ऐसे पुराने रिवाज को केंद्र में रखकर लिखा गया है जो उपन्यास प्रकाशन के समय तक अप्रासंगिक हो चुका था। जूरी दत्ता के अनुसार- "नए और पुराने के बीच टकराव की एक यथार्थवादी तस्वीर को लिंगझिक उपन्यास,जो शेरदुकपेन समाज की पृष्ठभूमि में लिखा गया है, में विविध रूपों में दर्शाया गया है।"[6]

उपन्यास की विषय-वस्तु शेरदुकपेन समुदाय के कुछ प्राचीन पारंपरिक सामाजिक रिवाजों पर पुनर्विचार की माँग करती है। 'लिंगझिक' का अर्थ है पत्थर का एक स्तंभ, जो किसी बहुत बड़े फैसले के प्रतीक के रूप में गाड़ा जाता है। पत्थर का यह स्तंभ कबीले के उत्तराधिकारियों को और आने वाली पीढ़ियों को उस बड़े फैसले की याद दिलाता रहता है। शेरदुकपेन समुदाय के लोगों का मानना है कि अगर कोई भी उस निर्णय का उलंघन करता है, तो पत्थर का स्तंभ उसे नुकसान पहुँचाएगा। इसके साथ ही इस उपन्यास के कुछ पात्रों में विवाह से जुड़े 'कन्या मूल्य' जैसे पुराने रिवाज, जो स्त्रियों के लिए अत्यंत अपमानजनक और पीड़ादायी होता है, के प्रति असंतोष और विद्रोह की भावना भी दिखाई पड़ती है।

यह उपन्यास हमें पारंपरिक शेरदुकपेन विवाह प्रणाली से भी परिचित कराता है। दूल्हे के परिवार के कुछ लोग लड़की को दूल्हे के घर में छोड़ देते हैं और दुल्हन को परिवार

में तीन दिनों के लिए रखने के बाद उसे वापस भेजा जाता है और फिर से शुभ दिन पर उसे दूल्हे के पूरे परिवार द्वारा वापस लाया जाता है। इस उपन्यास में शेरदुकपेन समाज में विवाह से संबंधित एक अन्य पहलू 'सामू' के बारे में भी बताया गया है। शेरदुकपेन समाज में अगर एक भतीजी की शादी उसके मामा के लड़के से हो जाती है तो उसे 'सामू' कहा जाता है।

'लिंगझिक' उपन्यास में लेखक ने कई अनुष्ठानों, रीति-रिवाजों और पारंपरिक मान्यताओं के बारे में बात की है, जो न केवल अरुणाचल के आदिवासी जीवन को हमारे सामने स्पष्ट करती हैं,बल्कि उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाने में भी मदद करती हैं। यह उपन्यास,हालाँकि अधिकांश में स्थानीयों रंगों से भरा है, लेकिन इसमें अन्य कई तरह के विषय भी शामिल हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि उपन्यास का मूल विषय शेरदुकपेन समाज और संस्कृति से जुड़ा है, लेकिन यह भी सच है कि इसमें सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का सार्वभौमिक स्वर भी मौजूद है। समाज के आंतरिक और बाहरी संघर्ष की प्रक्रिया को प्रस्तुत करने में भी थोंगछी जी सफल रहे हैं।

येशे दोरजी थोंगछी का साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत उपन्यास **'मौन ओंठ मुखर हृदय'** पहली बार 1991 में असमिया आवधिक प्रांतीय शृंखला में प्रकाशित हुआ था। बाद में इसका हिन्दी अनुवाद **'मौन होंठ मुखर हृदय'** नाम से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक अपरंपरागत अंत के साथ प्यार के पारंपरिक विषय से संबंधित है, जहाँ प्रेमी सामाजिक रूप से एक होने के लिए सामाजिक बाधाओं को दूर नहीं कर पाते। उपन्यास की कहानी 1950 के दौरान अरुणाचल प्रदेश की है जब ऊँची पहाड़ियों पर एक सड़क का निर्माण किया जा रहा था। "उपन्यास में थोंग्छी जी ने जहाँ भौगोलिक और सामाजिक समस्याओं को बारीकी से चित्रित किया है तो वहीं अंधाधुंध विकास से होने आसन्न संकटों तथा आगामी खतरों से भी आगाह किया है। यह उपन्यास का सबसे उदात्त पक्ष है। सड़क

निर्माण से यातायात के साधन बढ़ेंगे तो निश्चित ही मैदानी या बाहरी लोगों की भी आवाजाही बढ़ेगी। क्या बाहरी लोग इन भोली-भाली स्थानीय लोगों का शोषण नहीं करेंगे? प्रत्येक बाहरी व्यक्ति साफ नीयत से तो आएंगे नहीं। क्या ये बाहरी लोग इनके पुरखों की वन-संपदा आदि का अविवेकपूर्ण शोषण नहीं करेंगे? क्या ये बाहरी लोग इनकी आदिम संस्कृति को गंदला नहीं करेंगे? क्या इनकी परंपरा, रीति-रिवाज, आस्था-विश्वास आदि अक्षुण्ण रहेगा आदि ऐसे अनेकों प्रश्न उपन्यासकार ने दिलीप सैकिया नामक पात्र के द्वारा उठाया है..."[7]

इस उपन्यास का शीर्षक दो आत्माओं के बीच गहरे प्रेम को व्यक्त करता है, जहाँ भाषा अर्थहीन है। दोनों प्रेमी एक-दूसरे से अलग-अलग भाषा में बात करते हैं, लेकिन इससे उनके संवाद में कोई अवरोध पैदा नहीं होता। प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे के साथ दिल से बातें कर लेते हैं। जूरी दत्ता लिखती हैं- "मौन होंठ मुखर हृदय थोंगछी के पारंपरिक विषय-वस्तु से प्रस्थान को रेखांकित करता है। जहाँ सोनाम और लिंगझिक क्रमशः मनपा और शेरदुकपेन जनजाति के विशेष सामाजिक रिवाजों पर आधारित हैं, वहीं 'मौन होंठ मुखर हृदय' किसी विशेष सामाजिक रिवाज से सम्बद्ध नहीं है। इसके बजाय यह एक लड़के और लड़की के बीच प्यार के सार्वभौमिक विषय पर आधारित है, जो विभिन्न भाषाएँ बोलते हैं लेकिन दिल की एक ही भाषा साझा करते हैं।"[8]

यह उपन्यास प्रेम, आशा, आकांक्षा और सपनों की मानवीय भावनाओं से संबंधित है, जो समाज और यहाँ तक कि दो प्रेमियों के बीच भाषा की सीमा को भी पार कर जाता है। दोनों ही अपने अलग-अलग जनजातीय रीति-रिवाजों और परंपराओं से जुड़े हुए हैं, फिर भी दोनों के बीच प्रगाढ़ प्रेम प्रस्फुटित होता रहता है। लेकिन उपन्यास के अंत में, वे सामाजिक बाधाओं को दूर करने के लिए खुशी से एकजुट नहीं हो पाते हैं।

उपन्यास में प्रेमी-प्रेमिका की अलग-अलग जनजातियों अर्थात शेरदुकपेन और न्यीशी समुदाय की मान्यताओं और रीति-रिवाजों का लेखा-जोखा है। उपन्यास में शेरदुकपेन समाज में विवाह की पद्धति का उल्लेख है। जैसा कि 'लिंगझिक' उपन्यास में भी उल्लेख है- शादी के बाद दुल्हन को दूल्हे के घर तीन दिनों तक रखने के बाद उसे अपने घर वापस भेज दिया जाता है और फिर से किसी शुभ दिन उसे दूल्हे के पूरे परिवार द्वारा वापस लाया जाता है। इसी तरह उपन्यासकार मिथुन के रूप में 'कन्या-मूल्य' देने की न्यीशी परंपरा के बारे में भी बताता है।

यद्यपि येशे दोरजी थोंगछी का यह उपन्यास प्रेम के सार्वभौमिक विषय से संबंधित है, पर यह हमारे सामने आदिवासी जीवन और समाज की एक अद्‌भुत तस्वीर पेश करने में भी सफल रहा है। उपन्यास लोक मान्यताओं, अंधविश्वासों और सांस्कृतिक प्रसंगों से भरा हुआ है। लेखक स्वयं या फिर किसी पात्र के संवाद के माध्यम से शेरदुकपेन तथा न्यीशी समुदायों के बारे में बात करता चलता है। उपन्यास के पहले पन्ने में ही शेरदुकपेन लड़कियाँ 'बोनमानुह' और 'जोकिनी' (आत्मा या भूतनी) का डर व्यक्त करती हैं। उपन्यास में आदिवासी समाजों में मेहमानों के स्वागत के पारंपरिक तरीकों जैसे- गीत-नृत्य का प्रदर्शन और अतिथियों को लाउपानी (स्थानीय शराब) भेंट करना आदि का भी उल्लेख है।

लेखक ने अरुणाचल की जनजातियों और जनजातीय समाजों की विविधता के यथार्थवादी तस्वीर को स्थानीय शब्दों के समावेश के साथ प्रस्तुत करने की कोशिश की है, जैसे कि लाउपानी, आपो, हारांग, निचाक, गिदी, दिचू, निदा, चापे और चानाप, मोन, तुलू , लीविंग आदि।

येशे दोरजी थोंगछी का उपन्यास **'शव काटनेवाला आदमी'** 2004 में 'शव कटा मानुह' नाम से असमिया में और 2014 में हिन्दी में अनूदित होकर 'शव काटनेवाला आदमी' नाम से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की मनपा जनजाति से

संबंधित है। उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण विषय मनपा जनजाति में शव काटने की प्रथा है। मनपा समुदाय में मृत शरीर को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर और फिर इन टुकड़ों को नदी में फेंककर शव संस्कार करने की प्रणाली है। एक सौ आठ की संख्या का अपना महत्व है। येशे दोरजी थोंगछी से लिए गए साक्षात्कार में उन्होंने बताया कि "एक सौ आठ की संख्या का बौद्ध धर्म से संबंध है। एक सौ आठ अच्छी संख्या मानी जाती है। एक सौ आठ शुभ माना जाता है। ज्योतिषी नक्षत्र में भी इसका महत्व है।"[9] उपन्यास की घटनाएँ और कथा शव-संस्कार के इसी रिवाज के इर्द-गिर्द घूमती हैं। इसके अलावा दलाई लामा के भारत आगमन, 1962 के चीन युद्ध आदि महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं से भी इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। जूरी दत्ता लिखती हैं- "1950 के दशक में दलाई लामा की तवांग यात्रा काफी राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व की बात थी। महान राजनीतिक और ऐतिहासिक महत्व की एक और घटना जिसपर यह उपन्यास आधारित है, वह है 1962 की चीनी आक्रामकता। समय के उस पड़ाव पर थोंगछी जाहिर तौर पर इन दो घटनाओं से काफी प्रभावित थे, इतना कि उन्होंने *शव कटा मानुह* लिखा–1962 के युद्ध की पृष्ठभूमि में एक लंगड़ी रिम्पोछे और एक शव काटनेवाले आदमी के प्रेम संबंध के बारे में लिखा गया एक उपन्यास। दलाई लामा की यात्रा के सुखद और शांतिप्रद प्रभावों और चीनी आक्रामकता के कहर के बीच के विषमता ने निश्चित तौर पर थोंगछी को प्रभावित किया।"[10]

येशे दोरजी थोंगछी उपन्यास को एक ऐतिहासिक और यथार्थवादी स्पर्श देते हैं। इसके लिए अपने इस उपन्यास में वे 1950 के भूकंप की वजह से बड़ी संख्या में मनपा लोगों की मौत, 1952 में तवांग का प्रशासन तिब्बत सरकार से भारत सरकार को हस्तांतरित किया जाना, तिब्बत पर चीन का कब्जा और दलाई लामा का तवांग जिले से होकर भारत में प्रवेश, चीन का हमला और हमले के दौरान सीमा तक बोझ लादकर ले

जाने वाले मनपा लोगों की मौत, दिरांग में दलाई लामा द्वारा कालचक्र पूजा इत्यादि ऐतिहासिक घटनाओं को शामिल करते हैं।

ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ कुछ ऐतिहासिक चरित्रों को भी इस उपन्यास में शामिल किया गया है। थोंगछी जी ने उपन्यास की भूमिका में लिखा भी है कि "इस उपन्यास में परम पावन दलाई लामा, तवांग महकुमा के तत्कालीन एडीशनल पोलटिकल ऑफिसर मिस्टर टी. के. मूर्ति और आर्मी कमांडर, लेफ्टिनेंट जनरल निरंजन प्रसाद को छोड़कर सारे चरित्र काल्पनिक हैं। ऐतिहासिक कारणों से उन तीनों के चरित्र को शामिल करना पड़ा।"[11]

यह उपन्यास एक बौद्ध सन्यासिन और एक साधारण मनपा पुरुष की निश्छल प्रेमकथा भी है। उपन्यासकार ने प्रत्यक्ष और स्पष्ट रूप से उनके बीच प्यार का कोई प्रसंग नहीं रखा है, लेकिन उपन्यास में आऊ थाम्पा और रिजोम्बा (रिम्पोछे) के संबंध को और उनके संवाद को ठीक से समझें तो उनके बीच प्रेम की गहरी भावना का पता चलता है।

उपन्यास में पारंपरिक मनपा समाज और उसकी संस्कृति के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया गया है। मनपा लोगों की जीवन-पद्धति के साथ-साथ, लोसेर, टोरग्या आदि उनके त्योहारों के माध्यम से उनकी संस्कृति को समझने का भी अवसर मिलता है। मनपा परम्पराओं, खासकर शव-संस्कार की अनोखी परंपरा को जानने-समझने के लिहाज से निश्चय ही थोंगछी जी का यह उपन्यास अत्यंत महत्वपूर्ण है। जमुना बीनी तादर लिखती हैं- "उनका उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' मोन्पा जनजाति का मृत्यु संस्कार की एक विचित्र प्रथा पर आधारित है। मोन्पा जनजाति बौद्ध धर्म की महायान शाखा की अनुयायी है। मोन्पा लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में बहाते हैं। आलोच्य उपन्यास इसी प्रथा की समाजशास्त्रीय दृष्टि से व्याख्या करता है।"[12]

'विष कन्यार देशत' (असमिया) उपन्यास का प्रकाशन 2006 में हुआ। यह उपन्यास एक वास्तविक घटना पर आधारित है। येशे दोरजी थोंगछी ने हत्या की एक सच्ची घटना के आधार पर यह उपन्यास लिखा है और असली कातिल के सामने आने तक उपन्यास रहस्यमय बना रहता है।

उपन्यास 'विष कन्यार देशत' अरुणाचल प्रदेश के पानचेनपा (मनपा का एक वर्ग) जनजाति के बीच प्रचलित एक लोक विश्वास पर आधारित है। उपन्यास 'डुमो' के बारे में पानचेनपा समुदाय की मान्यता को दर्शाता है। उपन्यासकार पाठकों को पानचेनपा लोगों के बीच प्रचलित एक लोक मान्यता से परिचित कराता है। पानचेनपा समुदाय में महिलाओं को 'डुमो' (जहरीली लड़की) माना जाता है। वे मानते हैं कि पानचेनपा लड़कियाँ अपने नाखूनों में जहर पैदा करती हैं। उन्हें कुछ भी परोसने की अनुमति नहीं है, क्योंकि वे जो भोजन परोसती हैं उसमें जहर मिला होता है और जो लोग भी वह भोजन ग्रहण करते हैं, मरते हैं। इस लोक मान्यता का संदर्भ अप्रत्यक्ष रूप से मिलता है। इसके अलावा उपन्यास में प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, अंधविश्वास, सुधारवादी उत्साह आदि जैसे अन्य सरोकार हैं। आदिवासी समाजों में महिलाओं की स्थिति के प्रति येशे दोरजी थोंगछी की चिंता भी इस उपन्यास में दिखाई पड़ती है।

'विष कन्यार देशत' उपन्यास में लेखक येशे दोरजी थोंगछी ने मनपा लोगों के नए साल के उत्सव यानी 'लोसेर' उत्सव का उल्लेख किया है। 'आजील्हामो' नृत्य का उल्लेख भी थोंगछी के इस उपन्यास में मिलता है, जहाँ उन्होंने 'आजील्हामो' नृत्य नाटक की तुलना हिन्दू महाकाव्य 'रामायण' से की है। 'जेब्रो' नृत्य का भी उल्लेख है, जिसे थोंगछी ने फुटनोट में 'एक आकस्मिक नृत्य' के रूप में वर्णित किया है, जिसे कहीं भी प्रदर्शित किया जा सकता है।

'मिसिंग' (असमिया) उपन्यास 2008 में प्रकाशित हुआ। भूत, आत्मा, पिशाच, ड्रैकुला आदि जैसी अलौकिक सत्ताको लेकर ढेरों मान्यताएँ आदिवासी समाज में प्रचलित होती हैं। येशे दोरजी थोंगछी का उपन्यास 'मिसिंग' के केंद्र में भी अरुणाचल प्रदेश के शेरदुकपेन जनजाति के बीच इन अलौकिक सत्ताओं के अस्तित्व के बारे में प्रचलित लोक विश्वास है। उपन्यास 'मिसिंग' के आरंभ में थोंगछी अपने बचपन के दिनों को याद करते हैं, जब वह भूतों की भयानक कहानियाँ सुना करते थे। उन्होंने यह भी देखा कि किस तरह उनके कबीले के लोग पूजा-अर्चना करते हैं और अपने घर या गाँव से आत्मा को दूर भगाने के लिए अनुष्ठान करते हैं। उपन्यास 'मिसिंग' उपन्यासकार की उन्हीं यादों पर आधारित है। शेरदुकपेन लोगों का मानना है कि एक पुरुष या एक महिला की आत्मा जो मृत्यु के कगार पर है, शरीर से बाहर निकलती है और लक्ष्यहीन रूप से घूमती है। शेरदुकपेन लोग इसे मिसिंग कहते हैं। यह लोगों के सामने आता है और उन्हें डराता है। शेरदुकपेन लोगों की मान्यता है कि यदि कोई व्यक्ति किसी मिसिंग को देख लेता है, तो उस व्यक्ति का मरना निश्चित है। उपन्यासकार ने उपन्यास में बार-बार मिसिंग का उल्लेख किया है और वास्तव में मिसिंग ने उपन्यास के कथानक में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसके अलावा प्रेम, विश्वास, भय, आपसी समझ और सहयोग उपन्यास के कुछ अन्य विषय हैं।

चोस्कर शेरदुकपेन जनजाति का एक वार्षिक त्यौहार है और इसे बौद्ध गोम्पा में मनाया जाता है। येशे दोरजी थोंगछी ने अपने उपन्यास 'मिसिंग' में चोस्कर उत्सव का वर्णन किया है। इसके अलावा एक खाद्य वस्तु 'खापसे' का उल्लेख भी उपन्यासकार ने किया है जो नए साल के त्यौहार 'लोसेर' के दौरान तैयार किया जाता है।

शेरदुकपेन 'डोऊ' (Dou) के अस्तित्व में विश्वास करते हैं, जो जीवित प्राणियों को खाता है। उनका मानना है कि अगर एक 'डोऊ इचिंग' (Dou Iching) एक गाँव में प्रवेश

करती है तो वह एक के बाद एक लोगों को मारती है। इसीलिए शेरदुकपेन जनजाति के लोग गाँव में 'डोऊ तिंबा' पूजा करते हैं। शेरदुकपेन जनजाति में 'डोऊ तिंबा' पूजा दो प्रकार की होती है- पहले प्रकार में बौद्ध लामा भूत का पीछा करने के लिए मंत्र पढ़ते हैं। वे एक गैर-हिंसक तरीके से भूत का पीछा करने की कोशिश करते हैं। वे उन्हें खुश करने पर या कभी-कभी उनसे दोस्ताना तरीके से बात करने पर गाँव छोड़ देते हैं। दूसरे प्रकार के ' डोऊ तिंबा' में जनजाति के आदिम धर्म के तरीकों को अपनाने के बाद भूत दूर हो जाते हैं। यहाँ 'जी जी' (Zhi Zhi) मक्के जैसे अनाजों आदि के साथ मंत्रों का पाठ करते हैं और उन अनाजों को भूतों पर हथियार की तरह फेंका जाता है। इस पद्धति में भूतों को या तो गाँव छोड़ने के लिए कहा जाता है या फिर पुजारी भूतों को मारता है। बौद्ध लामा भूत को नहीं मारते हैं न ही वे भूत को डाँटते हैं, बल्कि वे दोस्ताना तरीके से बात करके भूत को भगाने की कोशिश करते हैं और इसीलिए भूत भी चुपचाप चला जाता है और कभी उस गाँव में वापस नहीं आता है। थोंगछी जी ने अपने इस उपन्यास में'डोऊ तिंबा' पूजा का यथार्थ चित्रण किया है।

'मई आकोउ जनम लम' (असमिया) उपन्यास का प्रकाशन 2011 में हुआ। येशे दोरजी थोंगछी के इस उपन्यास का कथा-केंद्र तिब्बत है और यह लामा और रिन्पोछे के पुनर्जन्म के बौद्ध विश्वास पर आधारित है। हालाँकि उपन्यास का कथा-केंद्र तिब्बत है, लेकिन अरुणाचल प्रदेश में रहने वाले मनपा समुदाय के लोगों के साथ इस कथानक का गहरा संबंध है। मनपा पहले तिब्बती प्राधिकरण के अधीन थे। समूचे मनपा क्षेत्र- तवांग, दिरांग और कलकटांग में ल्हासा सरकार ने दिजोंगपोन लोगों की नियुक्ति की थी और दिजोंगपोन लोगों का मुख्य कर्त्तव्य मनपा लोगों से कर वसूल करना था। कर मुख्य रूप से चावल, मक्का आदि अनाजों के रूप में होता था। तिब्बतियों को अदा किए जाने वाले कर के भार को वहन करना मनपा लोगों का कर्तव्य था।

मनपा लोगों से तिब्बती दिजोंगपोन द्वारा अनुचित कर का संग्रह तब बंद हो गया जब मनपा लोगों की भूमि भारतीय अधिकार क्षेत्र में आ गई। भारत और तिब्बत के बीच मैकमोहन रेखा खींची गई, जिसके परिणामस्वरूप 6 अक्टूबर, 1913 को त्रिपक्षीय शिमला सम्मेलन में यह निर्णय लिया गया।

उपन्यास 'मई आकोउ जनम लम' रिम्पोछे के पुनर्जन्म की बौद्ध मान्यता पर आधारित है। इस उपन्यास में बौद्ध धर्म का पालन करने वाले मनपा लोगों पर तिब्बती मठों के नियंत्रण का वर्णन है। तिब्बत द्वारा भारत सरकार को तवांग के प्रशासन के हस्तांतरण से पहले अरुणाचल प्रदेश के मनपा लोगों ने जिस कठिनाई और पीड़ा का सामना किया,उसका चित्रण उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पक्ष है।

येशे दोरजी थोंगछी के तीन कहानी संग्रह- 'पापोर पुखुरी','अन्य एखन प्रतियोगिता ' तथा 'बाँह फुलर गोन्ध' प्रकाशित हैं। ये तीनों ही संग्रह असमिया में हैं। इनमें से किसी का हिन्दी अनुवाद अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। थोंगछी जी की कहानियों में भी अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज, संस्कृति और लोक मान्यताओं का सुंदर चित्रण मिलता है। ' पापोर पुखुरी' नामक कहानी प्लेग की बीमारी के पीछे की आदिवासी लोक मान्यता को स्पष्ट करती है। भाग्यश्री गोगोई लिखती हैं-"'पापोर पुखुरी'(पाप का पोखर) में लेखक ने दिखाया है कि कैसे आदिवासी लोगों की यह मान्यता रही है कि प्लेग की बीमारी पिछले जन्म में किए गए कुछ पापों का परिणाम है।"[13]

'बाँह फुलर गोन्ध' (बाँस फूल की गंध) कहानी भी एक लोक मान्यता पर आधारित है। इस कहानी के संबंध में भाग्यश्री गोगोई लिखती हैं- "येशे दोरजी थोंगछी की एक लघु कहानी 'बाँह फुलर गोन्ध' लोक विश्वास का चित्र प्रस्तुत करती है। आदिवासी लोगों के बीच एक लोक मान्यता है कि बाँस के फूल का खिलना 'अपशगुन' है। इस मान्यता के पीछे धारणा यह है कि इन फूलों के खाने से चूहों के प्रजनन दर में वृद्धि हो जाती है। इनके

प्रजनन में वृद्धि होने के चलते फसलों का काफी नुकसान होता है और खाद्यान्न-संकट की स्थिति बन जाती है।"[14]

हम कह सकते हैं कि येशे दोरजी थोंगछी असमिया के मशहूर कथाकार हैं, जिन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण लेखन किया है। उनके लेखन का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि उनकी कृतियों का अँग्रेजी, हिन्दी, बोडो, बांग्ला और रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में अब तक उनके तीन उपन्यास अनूदित हो चुके हैं- 'शव काटनेवाला आदमी', 'मौन होंठ मुखर हृदय','सोनाम। उनके उपन्यास 'सोनाम' पर फिल्म भी बन चुकी है, जिसे 2005 में राष्ट्रपति की ओर से रजत पदक प्राप्त हुआ है। निश्चित रूप से अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के समाज और उनकी संस्कृति के विभिन्न पक्षों को थोंगछी जी के लेखन के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

संदर्भ:

[1] जमुना बीनी तादर, पक्षधर पत्रिका, संपादक- विनोद तिवारी, वर्ष-12, संयुक्तांक: 25-26, जुलाई-दिसंबर, 2018 - जनवरी-जून, 2019, पृ. 171

[2] Juri Dutta, Ethnicity in the Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A New Historicist Approach, Adhyayan Publishers & Distributors, New Delhi, 2012, pp. 192

"Yeshe Dorjee Thongchi was born in the Jee basti of West Kameng District in the year 1952 and later rose to the position of an IAS officer. As he moved ahead in the journey of life, he probably lost touch with many near and dear ones. But, he believes in getting along in life with great optimism."(अनुवाद मेरा)

[3] जमुना बीनी तादर, पक्षधर पत्रिका, पृ. 174

[4] वही, पृ. 174

[5] Juri Dutta, Ethnicity in the Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A new Historicist Approach, pp. 160

"*Sonam* is basically about the sorrow and agony as well as the love and hatred among the three main characters caught in a love triangle. Apparently it seems that the women enjoy more freedom in the society that the novelist presents in *Sonam*, but while going through the novel, one discovers that it need not necessarily be so. The community is not only male-dominated but abounds in ideologies and beiefs that help in gender construction." (अनुवाद मेरा)

[6] वही, पृ. 164

"A realistic picture of the clash between the new and the old is depicted vividly in the novel *Lingjik* which is written in the backdrop of the Sherdukpen society".(अनुवाद मेरा)

[7] जमुना बीनी तादर, पक्षधर पत्रिका, पृ. 173

[8] Juri Dutta, Ethnicity in the Fiction of Lummer Dai And Yeshe Dorjee Thongchi: A new Historicist Approach, pp. 175

"*Mouna Ounth Mukhar Hriday* marks a departure from the conventional subject-matters of Thongchi. While *Sonam* and *Lingjhik* are based on a particular social custom of the Monpa and the Sherdukpen tribes, *Mouna Ounth Mukhar Hriday* is not rooted in any particular social custom. Instead it is based on the universal theme of love between a boy and girl who speak different languages but share the same language of the heart."(अनुवाद मेरा)

[9] साक्षात्कार, जो इस लघु शोध-प्रबंध के परिशिष्ट में शामिल है।

[10]Juri Dutta, Ethnicity in the Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A new Historicist Approach, pp 184 .

"Dalai Lama's visit to Tawang in the 1950s was a matter of great political and historical significance. Another incident of great political and historical import against which the novel is set is the Chinese aggression of 1962. At that point of time, Thongchi was obviously greatly influenced by these two events, so much so that he wrote *Saba Kota Manuh* – a novel about the relationship between a lame Rimpoche and a man who slices dead bodies against the background of the war of 1962. The constrast between the soothing effects of Dalai Lama's visit and the ravages of the Chinese aggression obviously had an effect upon Thongchi." (अनुवाद मेरा)

[11]येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, भूमिका, पृ. 8

[12]जमुना बीनी तादर, पक्षधर पत्रिका, पृ. 171

[13]Bhagyashree Gogoi, Reflection Of Changing Tribal Life And Culture of Arunachal Pradesh In The Short Stories Of Yeshe Dorjee Thongchi, Int. J. Adv. Res. 7(7), July 2019, pp.993

"In 'Papor pukhuri' (Pond of Sin) the writer has shown how the tribal people believe that the Plague disease is a result of some sins done in the previous life."

[14] वही, पृ 993 .

"Yeshe Dorjee Thongchi's another short story 'Bah Fulor Gundho' (Fragnance of Bamboo Flower) draw picture of folk belief. There is a folk belief among the tribal people that blooming of bamboo flower is a bad 'omen'. Blooming of this is believed to show the increase of the fertility rate of the rats. This leads to the destruction of the crops and the end is food crisis." (अनुवाद मेरा)

अध्याय- 2

मनपा समाज और संस्कृति का परिचय

2 मनपा समाज और संस्कृति का परिचय

अरुणाचल प्रदेश हिमालय की गोद में बसा अति सुंदर प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर बड़ा ही मनमोहक राज्य है। अरुणाचल का अर्थ 'उगते सूर्य का पर्वत' माना जाता है क्योंकि यहाँ से ही सर्वप्रथम सूर्य के प्रकाश का आगमन होता है। अरुणाचल में इंडो-मंगोलियन प्रजाति के लोग रहते हैं। मानवशास्त्रियों के अनुसार यहाँ पर सौ से अधिक आदिवासी समूह पाए जाते हैं, जिनमें से पच्चीस से अधिक स्वतंत्र जनजाति के रूप में हैं। इन आदिवासियों में कबीले की प्रथा पाई जाती है, जिसका निर्धारण उनके वंशज और गोत्र द्वारा होता है। इनके यहाँ शादी-विवाह कबीले की परम्परा के अनुसार ही होते हैं। यहाँ मुख्य रूप से मनपा, शेरदुकपेन, खंबा, हिलमिरी, मिजी, सुलुंग, तागिन, बूगुन, अका,न्यीशी, आपातानी, आदी, ईदु मिशमी,खामती, सिंगफो, तांगसा, वांचू, मिसिंग और लीसू आदि प्रमुख जनजातियाँ हैं। यहाँ के आदिवासियों को अपनी संस्कृति पर गर्व है। इस पर विचार करते हुए माता प्रसाद ने लिखा है- "यहाँ की जनजातीय संस्कृति संरक्षित है। यहाँ के लोगों को अपनी संस्कृति से बड़ा लगाव है। दूसरे धर्मों में जाने पर भी वेशभूषा और पर्व-त्योहार जो पहले के हैं, उन्हें नहीं छोड़ते। ये गीत और नृत्य के बड़े प्रेमी हैं। युवक-युवतियाँ मिलकर इनमें भाग लेते हैं। इन गीतों में प्राचीनकाल से चली आ रही लोकगाथाओं को यह गाते हैं। हजारों वर्षों से यश गीत परंपरागत गाते चले आ रहे है।"[1] यहाँ के आदिवासी अपनी-अपनी बोली बोलते हैं। सभी जनजातियों की अलग-अलग भाषाएँ हैं। संपर्क भाषा के रूप में कमोबेश हिन्दी का प्रचलन है। अरुणाचल के आदिवासियों के स्वभाव की एक प्रमुख विशेषण है- इनके शांतिपूर्ण सहअस्तित्व की भावना। इन आदिवासियों में खेती, उत्सव और अन्य धार्मिक कार्यों में सब लोग सहयोग देते हैं। यहाँ की मनपा, शेरदुकपेन,खामती, सिंगफो आदि जनजातियाँ अधिकतर बौद्ध धर्म

के मतानुयायी है। अन्य जनजातियों में हिन्दू और ईसाई धर्म को मानने वाले लोग भी हैं। यहाँ विभिन्न जनजातियों में अपने पारंपरिक आदिवासी धर्म को मानने वाले लोग भी हैं। ये समुदाय अनेक त्योहार मानते हैं जो इनके कबीले की प्रथा से जुड़े हुए हैं। ये कला और संगीत के भी प्रेमी हैं।

अरुणाचल प्रदेश प्रर्वतीय प्रदेश होने के कारण पहाड़ियों, पर्वत श्रेणियों, गहरी खाइयों, नदी घाटियों और जंगलों से भरा हुआ है। प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश अद्‌भुत है। विश्व के सबसे ऊँचे पर्वत हिमालय की पूर्वी शृंखला में स्थित इस प्रदेश में विभिन्न जनजातियाँ प्राचीन काल से बसी हुई हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी अलग-अलग बोली, अलग-अलग रीति-रिवाज तथा भिन्न-भिन्न वेशभूषा है। यह प्रदेश अपने-आप में विविधताओं में एकता का प्रतीक है।

अनेक प्रकार की विविधताओं से युक्त भारत को जानने के लिए यहाँ की सांस्कृतिक विविधता को समझना जरूरी है। विशेषकर पूर्वोत्तर के संदर्भ में यह बहुत अधिक महत्वपूर्ण है, जहाँ बसे हुए विभिन्न जनजातीय समूहों की भाषा, संस्कृति, जीवन शैली और पहचान शेष भारत से पूरी तरह अलग है। इन जनजातियों का रहन-सहन, वेश-भूषा, खान-पान, रंग-रूप बहुत कुछ भारत के मुख्य क्षेत्र से अलग तरह का है। पूर्वोत्तर की अधिकांश जनजातियों के समान अरुणाचल प्रदेश में बसी जनजातियाँ भी शेष भारत के लिए अज्ञात या अल्पज्ञात रही हैं। मनपा जनजाति भी सुदूर पश्चिमी अरुणाचल प्रदेश में बसी हुई ऐसी ही एक जनजाति है।

मनपा समाज और संस्कृति के विभिन्न पक्षों को अलग-अलग बिन्दुओं के तहत समझा जा सकता है।

1) सामाजिक संरचना: अरुणाचल प्रदेश का सुदूर पश्चिमी भाग बौद्ध धर्म के महायान शाखा के मतावलंबी मनपा लोगों की मातृभूमि है। मनपा का शाब्दिक अर्थ-'मोन' अर्थात ' निचला क्षेत्र' और 'पा' अर्थात 'इसके लोग' है। अर्थात् निचले क्षेत्र के लोग। 'मनपा' नाम में दक्षिणी तिब्बत के कम ऊंचाई वाले उप-मोंटाने क्षेत्र में रहने वाले सभी आदिवासी शामिल हैं। मनपा जनजाति के लोग सरल, सौम्य और विनम्र होते हैं। वे बौद्धधर्म के महायान संप्रदाय को उनके मूल ज्ञानवादी विश्वासों के प्रतिरूप मानते हैं। वे मृत्यु संबंधी अनुष्ठानों को बचाए रखने पर विशेष बल देते हैं- उदाहरण के लिए शवों को एक सौ आठ टुकड़ों में काटने की प्रथा। मनपा जनजाति के लोग मुख्य रूप से कामेंग के पूर्ववर्ती जिले में बसे हैं। बाद में तवांग पश्चिमी कामेंग और पूर्वी कामेंग के रूप में द्विभाजित किया गया। मनपा लोगों के गाँव केवल तवांग और पश्चिमी कामेंग जिलों में पाए जाते हैं और अतीत में उन्हें भूटिया कहा जाता था। मैदानी इलाकों में लोग उनकी पहचान से अनभिज्ञ थे। तवांग मनपाओं को कभी-कभी ब्राह्मी मनपा कहा जाता है और कलकटांग मनपा को सांगला (Tsangla) के रूप में भी जाना जाता है। पश्चिमी कामेंग जिले में खालेंगथांग (कलकटांग) और दिरांग के नागरिक उप-प्रभागों में मनपा कई गाँवों में पाए जाते हैं। इन दो उप-विभाजनों के मनपा नागरिक उप-विभाजनों के नामों से अपनी पहचान रखते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के पूर्वी कामेंग जिले में मनपा व्यावहारिक रूप से तीन समूहों में पाए जाते हैं। वे- खालेगथांग (कलकटांग) मनपा, दिरांग मनपा, तवांग मनपा। कलकटांग का सही नामकरण 'खालेगथांग' है, हालाँकि कलकटांग शब्द काफी पसंद किया गया। यह कहा जा सकता है कि आदिवासी भारत में स्थानों और गाँवों के अधिकांश नाम कुछ अर्थ रखते हैं। खालेगथांग का अर्थ इस प्रकार है: खालेग का अर्थ भोजन है और थांग का अर्थ पठार है और इसलिए यह भोजन या खालेंगथांग का पठार है। "यह कहने की आवश्यकता है कि मनपा आदिवासी समाज अपनी भाषा के आधार पर मोटे तौर पर सात उप समूहों में

विभाजित है। ये उप समूह दिरांग मनपा,पांगचेन मनपा,बुत मनपा,चुग मनपा,लिश मनपा, तवांग मनपा और कलकटांग मनपा के रूप में जाने जाते हैं।"[2]

यहाँ यह कहा जा सकता है कि उपर्युक्त उप-समूहों या स्थानिक विभाजनों के अलावा, थिंगबूपा, मगोपा, लुगु थांगपा, राहुंग्पा, खाईतांपा और कुछ अन्य समूह भी हैं, जिन्हें वृहत्तर मनपा समूह का सदस्य माना जाता है। स्थानिक विभाजनों पर आधारित उप-समूहों के भेद मुख्य रूप से केवल उनकी भाषाओं में प्रकट होते हैं। भाषाई अंतर किसी भी तरह से उनके सामाजिक-सांस्कृतिक अंतर का संकेत नहीं है।

मनपाओं के गाँव में सभी वयस्क सदस्यों द्वारा चुना गया एक ग्राम परिषद् होता है। निर्वाचित सदस्यों में चोरगेन (मुखिया) गाँव के प्रत्येक समूह के मामलों का निपटारा करता है। चोरगेन का अर्थ 'प्रमुख' है, जो ग्रामीणों के एक समूह की जिम्मेदारी लेता है।

चोरगेन का चयन करते समय अनुभव, क्षमता, सामाजिक स्थिति, पारंपरिक प्रथाओं और रीति-रिवाजों का ज्ञान, वक्तृत्व कौशल, विश्वसनीयता आदि जैसे मानदंडों का ध्यान रखा जाता है। एक चोरगेन तीन साल की अवधि के लिए चुना जाता है। उसे अक्षमता या किसी विशेष गलती के लिए 'सांगजोम' द्वारा हटाया जा सकता है। वह परिवार में बुढ़ापे, बीमारी या परेशानी के आधार पर अपना इस्तीफा भी दे सकता है, हालाँकि महासभा अपने विवेक से इसे स्वीकार करने से इंकार कर सकती है। जब चोरगेन का कार्यालय मौजूदा मुखिया की मृत्यु के कारण खाली हो जाता है, तो उसे बचे हुए कार्यकाल के लिए या पूर्ण अवधि के लिए चुनाव द्वारा भरा जा सकता है। व्यवहार में एक चोरगेन, एक बार चुने जाने के बाद, हर तीन साल बाद, जब तक उसकी मृत्यु नहीं हो जाती या वह इस्तीफा नहीं दे देता है, तब तक पुन: निर्वाचित होता रहता है। इस्तीफा

केवल दुर्लभ मामलों में ही स्वीकार किया जाता है। आम तौर पर पद पर बने रहने के लिए अधिकारी पर बहुत दबाव होता है।

चुने गए मुखिया के कर्तव्यों में न केवल गाँव का प्रशासन शामिल है, बल्कि गाँव के कल्याण से संबंधित सभी मामलों में सलाह और मार्गदर्शन देना भी शामिल है। इन कार्यों को करने में वह एक ग्राम परिषद् की सहायता लेता है, जिसमें अन्य ग्राम अधिकारी शामिल होते हैं। चोरगेन (मुखिया) गाँव की भलाई के लिए आयोजित धार्मिक समारोहों और त्योहारों की देखरेख के लिए भी जिम्मेदार होता है। सभी नागरिक और आपराधिक विवादों के फैसले वही करता है। मुखिया का यह पद पूरी तरह से अवैतनिक होता है। वेरियर एल्विन लिखते हैं- "चोरगेन को कोई वेतन नहीं दिया जाता। हालाँकि,गाँव के प्रत्येक गृहस्वामी को उसे ब्लांकपा (मुफ्त श्रम)देना होता है। ब्लांकपा (blankpa) को एक आदमी के एक दिन के श्रम के बराबर गिना जाता है और इसे या तो सेवा के रूप में या नकद या किसी वस्तु के रूप में प्रदान किया जा सकता है।"[3]

2) निवास: मनपा आदिवासी समुदाय के घरों का निर्माण लकड़ी और पत्थरों से किया जाता है। ये घर दो मंजिला होते हैं, लेकिन मजिलें आकार में भिन्न होती हैं। उनके फर्श लकड़ी के तख्तों के बने होते हैं और कभी-कभी उनके दरवाजे और खिड़कियों की लकड़ी पर उत्कृष्ट नक्काशी की कला दिखाई पड़ती है। बांस की चटाई का उपयोग उनके घरों की छतों को बनाने के लिए किया जाता है और यह भीषण ठंड के समय में उनके कमरे को गर्म रखती है। कुछ घरों में बैठक में चूल्हा और बैठने के तख्तानुमा बेंच भी बना होता है। स्थानीयता के आधार पर भिन्न-भिन्न मनपा समुदाय के लोगों के घरों की निर्माण-प्रक्रिया और बनावट में अंतर होता है। लगभग चालीस वर्षों तक पूर्वोत्तर के आदिवासी समाजों का अध्ययन करने वाले मानवविज्ञानी क्रिस्टोफ वॉन फ्यूरर- हाइमनडोर्फ अपनी किताब 'हाईलैंडर्स ऑफ अरुणाचल प्रदेश' में बताते हैं- "कामेंग जिले के भीतर ही ऊंचाई की

भिन्नता के कारण मनपा लोगों के घर बनाने के तरीके अलग-अलग होते हैं। अपेक्षाकृत नीचे खालेगथांग क्षेत्र के मनपा जहाँ ज़्यादातर अपने घर लकड़ियों से बनाते हैं, वहीं दिरांग के लोग मुख्य रूप से पत्थर का उपयोग भवन निर्माण सामग्री के रूप में करते हैं, हालाँकि उनके घरों के ढाँचे और साथ में बरामदे लकड़ी के तख्तों से बने होते हैं। तवांग क्षेत्र में, जहाँ बस्तियाँ 6,000 से 12,000 फीट के बीच बसी हैं, वहाँ घरों का पूरा बाहरी हिस्सा आमतौर पर पत्थर से बना होता है, जबकि लकड़ी का इस्तमाल घर के भीतरी हिस्सों में और छतों को ढकने के लिए मोटे तख्ते के रूप में होता है।"[4]

खालेगथांग मनपा लोग के घर को पितेई (Pitei) कहा जाता है। छत के कोनों को तेज हवा से सुरक्षा के लिए दीवारों से बाँधा जाता है। दीवारें लकड़ी के तख्तों की होती हैं जिन्हें हटाया भी जा सकता है, और हटाने के बाद खुली हुई जगह खिड़की का काम करती है। छत के बीच की जगह, जिसे 'याप' (Yap) कहा जाता है, का उपयोग अनाज भंडारण के लिए किया जाता है, जहाँ लकड़ी की सीढ़ियों से जाया जाता है।

मनपा लोग गृह-निर्माण से पहले लामा से सलाह लेते हैं। लामा तिब्बती मनपा पंचांग के अनुसार एक शुभ तिथि तय करता है और फिर आम तौर पर मनपा घर की नींव रखता है। विभाष धर लिखते हैं- "खालेगथांग और दिरांग क्षेत्र में घरों के निर्माण के लिए सबसे अनुकूल महीनाबौद्ध कैलेंडर के अनुसार नौंवाँ महीना है।"[5] यह समय आमतौर पर कृषि गतिविधियों से मुक्त होता है।

3) खान-पान: मनपा लोगों के कुछ खाद्य पदार्थों के नाम श्या फ्रूम रिमोम, छुरपी, छुर सिंगबा, छुर चिरपेन, छुरपूपू, मारचांग, सोयाबीन छुरपी (लिबी), छुरपी चटनी, याक का मांस, पुतांग, याक की चर्बी, खांग्पा, काकुन, सोलु क्रेपू, खापसे, काकुम नाका यालेन, बोंग,

तोरमा, मोमो इत्यादि हैं। दिरांग मनपा लोग न केवल देशी खाद्य फसलों बल्कि स्थानीय फलों, सब्जियों और मसालों का भी संरक्षण करते हैं।

मनपा लोगों के कुछ प्रिय खाद्य पदार्थ हैं, जो विशेष सांस्कृतिक और सामाजिक अवसरों के दौरान पेश किए जाते हैं और केवल विशेष मेहमानों को दिये जाते हैं। रंजय के सिंह बताते हैं कि "इन खाद्य पदार्थों में स्थानीय पनीर, याक का सूखा माँस, सोलु क्रेपू (सूखी उबली हुई हरी मिर्च), नीली हरी शैवाल (रिमोम) [जिसे तवांग मनपा बोली में छियाय (छी का अर्थ पानी) कहते हैं।], घी और छुरपी (याक के दूध से बना पनीर) अमीर लोगों के बीच अधिक लोकप्रिय हैं।"[6]

4) पहनावा: मनपा लोगों के पहनावे के बारे में विभाष धर लिखते है- "मनपा लोगों को उनके कपड़ों के चमकीले रंगों के कारण किसी भी भीड़ में आसानी से दूर से पहचाना जा सकता है। वे हल्के स्ट्राबेरी लाल रंग के परिधानों को पसंद करते हैं। पुरुषों और महिलाओं द्वारा पोशाकों को एक प्राकृतिक रंग का उपयोग करके रंगा जाता है, जिसे वहाँ 'चोई' कहते हैं। मनपा पुरुष याक की छाल से बनी काली टोपी का उपयोग करते हैं, जिसे तवांग मनपा द्वारा 'शम' के रूप में जाना जाता है, जबकि अन्य मनपा इसे 'यामु' कहते हैं। मनपा लोगों की टोपी की खासियत यह है कि इसमें लगभग छह इंच लंबाई के चार फुदने होते हैं।"[7]

मनपा पुरुष तिब्बती चुगबा पहनते हैं। कुछ लोग टोपी के साथ पतलून और कोट भी पहनते हैं। पुरुषों की शर्ट को 'एंडी' कहा जाता है, जिसे तिब्बती शैली में पहना जाता है। पुरुषों के लिए छोटे ऊनी पतलून को 'कांगनोम' कहा जाता है और पूरी लंबाई के ऊनी पतलून को 'ढोरना' के नाम से जाना जाता है। इस समुदाय की महिलाएँ लंबी बिना बाँह

वाली कमीज और गर्म जैकेट पहनती हैं। उनके लाल रंग के गाउन को 'शिंका' कहा जाता है। वे विभिन्न सौंदर्य सामग्री और कई तरह के गहनों के साथ खुद को सँवारना पसंद करती हैं। बाँस से बने छल्ले, झुमके, हार आदि लाल मोतियों से अलंकृत होते हैं।

मनपा पोशाक अपने रंग, विविधता, समृद्धि, शैली और सुंदर बनावटों के लिए उल्लेखनीय है। वेरियर एल्विन मनपा लोगों के बारे में लिखते हैं- "वे कलात्मक भी हैं, भले ही उनकी कला गरीबी के कारण प्यार और फूलों की सजावट तक सीमित हो। लेकिन लगभग उन सब के पास प्यारी चीजें होती हैं – एक रंगीन कमरबंद, एक सजी हुई टोपी, एक चाँदी की तलवार और उत्कृष्ट रूप से चित्रित लकड़ी या मिट्टी के कप,...मनपा पोशाक खास कलिमपोंग की तरह होता है, लेकिन महिलाएँ एक आकर्षक कपड़ा बनाती हैं, कत्थई रंग का, पुरुषों और जानवरों के खास शैली के चित्रों से सुसज्जित, जिसका उपयोग एक शॉल, कमरबंद या कोट के रूप में किया जाता है। भूटानी प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है, और एक निश्चित मात्रा में कपड़ा भूटान और तिब्बत से आयात किया जाता है, जबकि बनारस के जरीदार कपड़े और सिल्क का इस्तमाल महिलाओं की टोपी और ऊपरी वस्त्र तथा पुरुषों की टोपी और शर्ट बनाने में किया जाता है। वे सुंदर कालीन भी बनाते हैं।"[8]

दिरांग और कलकटांग क्षेत्रों में मनपा पुरुष एक प्रकार का छोटा पतलून पहनते है जिसे डोरना (Dorna) कहा जाता है। डोरना या डोरमा के ऊपर एक ऊनी या रेशमी शर्ट और एक जैकेट डाल लिया जाता है। कलकटांग में मनपा पुरुष लाल रंग का एक कपड़ा छाती के ऊपर आड़े-तिरछे पहनते हैं और रंगीन साइड बैग लेते हैं।

महिलाएँ एक बिना आस्तीन का परिधान पहनती है, जिसे चाँदी के लॉकेट द्वारा पिन किया गया होता है। इसे 'सिंगका' कहते हैं और यह गाउन के रूप में कंधे से लेकर टखने तक पूरे शरीर को ढकता है। रेशम का एक रंगीन और सुंदर कमरबंद चारों ओर कसकर पहना जाता है। धारीदार काले ऊनी वस्त्र का एक टुकड़ा जो कमर से पीठ तक और घुटनों तक होता है, हमेशा पहना जाता है। सिंगका के ऊपर रंगीन रेशम की पूरी बाजू की कढ़ाई वाली जैकेट पहनी जाती है। महिलाएँ लाल या काले रंग का ऊनी लहंगा भी पहनती है। सामान्य पोशाक के अलावा मठों, त्योहारों, नृत्य और धार्मिक समारोहों के लिए विशेष वेशभूषा होती है।

तवांग और दिरांग मनपा चमड़े और ऊन के कपड़े पहनते हैं। महिलाएँ एक प्रकार के सजे हुए ऊनी जूते पहनती हैं। मनपा लोगों के आभूषण ज़्यादातर चाँदी के होते हैं। महिलाओं का पसंदीदा गहना लाल-हरी अंगूठी और चाँदी की पिन है। पुरुष भी गले में चाँदी और हाथी दाँत की माला पहनते हैं।

5) वैवाहिक पद्धति: भरा-पूरा परिवार मनपा लोगों की प्राथमिक सामाजिक इकाई है, जिसमें एक विवाहित जोड़े और उनके बच्चे होते हैं। मनपा समाज में शादी के विभिन्न तरीके हैं। एक विवाह का पारंपरिक तरीका है, जिसमें लड़का-लड़की दोनों के परिवार वाले आपस में बातचीत करके रिश्ता तय करते हैं और दूसरा तरीका प्रेम विवाह का है। मनपा समाज में अपने ममेरे भाई और बुआ की बेटी के साथ शादी की अनुमति है। आर. एन. बागची कहते हैं-"अपहरण और कब्जा करके शादी का प्रचलन मनपा समाज में नहीं है... अपने ही ममेरे भाई और बुआ की बेटी के साथ शादी की अनुमति है। मनपा समाज में कन्या-मूल्य का भुगतान करना एक सामाजिक प्रथा है। एक स्त्री दो भाइयों की पत्नी हो सकती है। मनपा समाज में पारंपरिक तौर पर तलाक निषिद्ध है।"[9]

माता-पिता की सहमति तथा लड़का और लड़की दोनों की आपसी सहमति का मनपा विवाह में बहुत महत्व है। विवाह समारोह में औपचारिक रूप से दूल्हे के पक्ष के लोग शराब, अनाज और औपचारिक स्कार्फ लेकर दुल्हन के घर जाते हैं। फिर वधु के घर से सभी लोगों का दल दूल्हे के घर की ओर एक औपचारिक जुलूस (बारात) के रूप में चलता है। रास्ते में दल उन रिशतेदारों और दोस्तों के घरों पर रुकता है जो औपचारिक स्कार्फ की पेशकश करते हैं और शराब के साथ दल की आवभगत करते हैं। शादी का यह पूरा दल दूल्हे के घर पर दावत के लिए आमंत्रित किया जाता है।

हर जनजाति की शादी में ढेरों रीति-रिवाज होते है। तवांग के मनपाओं की शादी के भी कई नियम होते है। "तवांग मनपाओं में एकपतित्व /एकपत्नीत्व शादी का सामान्य नियम है, लेकिन एक आदमी अपनी पहली पत्नी की सहमति से दूसरी पत्नी ले सकता है... दुल्हन की कीमत में एक घोड़ा और एक याक दिया जाता है और इसका भुगतान तब किया जाता है जब एक लड़का लड़की से शादी करने की इच्छा को व्यक्त करता है... दूसरे अन्य आदिवासी समाजों की तरह मनपा जनजाति में कन्या-मूल्य का भुगतान करना उतना कड़ा रिवाज नहीं है। अगर लड़के के माता-पिता कन्या-मूल्य चुकाने में असमर्थ हैं, तो उसे चुकाने का दायित्व उनके बेटे पर होता है। आमतौर पर घर से बेटी को दहेज के रूप में गहने, बर्तन और कपड़े दिया जाता है। धनी व्यक्ति अपनी बेटी को जमीन या पशु भी देते है।"[10] मनपा लोगो में अलग-अलग तरीके से की गई शादियों को अलग-अलग नाम दिया गया है। जैसे - "समझौता वार्ता द्वारा तय किए गए विवाह को तवांग बोली में 'जीरो' और दिरांग बोली में 'फुनबान' कहा जाता है। माता-पिता की सहमति या असहमति से हुए प्रेम विवाह को सभी मनपा बोलियों में 'लेह' कहा जाता है और भागकर की गई शादी को 'क्रिगु' कहा जाता है।"[11]

कलकटांग मनपाओं में शादी के कुछ महत्वपूर्ण रीति-रिवाज माने जाते हैं। “कलकटांग मनपाओं के बीच एकपतित्व/एकपत्नीत्व का नियम है, लेकिन अगर किसी व्यक्ति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ठीक है तो वह व्यक्ति चाहे तो दूसरी शादी कर सकता है। विवाह आमतौर पर माता-पिता या रिश्तेदारों द्वारा तय किया जाता है। शादी की बातचीत की शुरुआत लड़के के माता-पिता द्वारा की जाती है। लड़के के माता-पिता लड़की के घर नहीं जाते है, बल्कि पहले गाँव के दूसरे घर में रहते हैं और लड़की के माता-पिता को इस बात से अवगत कराते हैं कि वे किस उद्देश्य से आए हैं। लड़के के परिवार वाले लड़की के माता-पिता को स्थानीय पेय का एक जार और कपड़े का एक टुकड़ा (खाडो) भेंट करते हैं। लड़की वाले शादी से सहमत होने पर ही उनका प्रस्ताव स्वीकार करते है।...यदि दोनों पक्ष शादी के लिए सहमत होते हैं, तो एक लामा की सलाह पर शादी की तारीख तय की जाती है।”[12]

मनपा लोगों में तलाक निषिद्ध है ,लेकिन बहुत से मामलों में तलाक लिया जाता है। शादीशुदा जोड़े के एक-दूसरे से अलग होने की वजहें कुछ इस तरह हैं –पति या सास द्वारा दुर्व्यवहार, एक अन्य महिला के साथ प्यार में पड़ना और बेवफ़ाई करना। अगर कोई पत्नी अपने पति को छोडना चाहती है तो उसे अपना दहेज वापस लेने की अनुमति दी जाती है। अगर किसी शादीशुदा पुरुष को दूसरी महिला के साथ प्यार हो जाता है और अपनी पत्नी को तलाक देना चाहता है, तो उसे अलग होना होगा और उसे खेती का जमीन का एक टुकड़ा देना होता है। तलाक के ऐसे मामले में, बेटियाँ आम तौर पर माँ के साथ जाती हैं जबकि बेटों को पिता द्वारा रखा जाता है। यदि कोई पति अपनी पत्नी को वैध कारण के बिना तलाक देता है, तो कन्या-मूल्य वापस नहीं की जाती है, लेकिन अगर कोई पत्नी अनुचित तरीके से अपने पति को छोड़ देती है, तो उसे या उसके माता-पिता को कन्या-मूल्य का दोगुना भुगतान करना होगा। संयोग से यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि

शादी की मामलों में मनपा समाज की उदारता और युवा लोगों की स्वतन्त्रता की पर्याप्त मात्रा के बावजूद, नाजायज जन्म की घटना काफी कम है।

6) धार्मिक स्थिति:अरुणाचल प्रदेश में मनपा सबसे बड़ी बौद्ध जनजाति है। मनपा जनजाति बौद्ध प्रथाओं के प्रति उत्साही और विश्वासी है। वे तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुग्पा या निंगमापा संप्रदायों से संबंधितहैं। मनपा जनजाति के धार्मिक प्रतिष्ठानों में एक गोम्पा है जो एक मंदिर है, जिसमें बुद्ध की छवियाँ अंकित होती हैं। उनकी कुछ धार्मिक पुस्तकें भी हैं। वे अपने घरों में भी पूजा करते हैं। "मनपा लोग अपने घरों के सबसे अच्छे हिस्से में वेदियाँ बनाकर उन्हें सजाते हैं, जहाँ भगवान बुद्ध और अवतार लामाओं की धातु या मिट्टी से बनी छोटी मूर्तियों को श्रद्धा के साथ रखा जाता है और दीपक और अगरबत्ती जलाकर उनकी पूजा की जाती है।"[13]

बौद्ध धर्म जो तिब्बत से मनपा समाज तक आया है, तिब्बती-बौद्ध धर्म के रूप में जाना जाता है। मनपा लोग इसी बौद्ध धर्म को मानते हैं। "लामा तिब्बती-बौद्ध धर्म के भिक्षु थे, लेकिन उन्हें सामान्य लोगों के घरों में पुजारी के रूप में अनुष्ठान कराने की अनुमति दी गई थी। शायद, यह तिब्बत में उस बौद्ध धर्म के समन्वित रूप के चरण की शुरुआत थी जो बाद के समय में मनपा लोगों तक पहुँच गया।"[14]

मनपा जनजाति में बौद्ध धर्म के आगमन से पहले से ही बॉन धर्म का पालन करते आ रहे है। बाद में वे तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुग्पा और निंगमापा संप्रदायों का अनुसरण किया। मनपा क्षेत्र में तिब्बती बौद्ध धर्म का प्रसार सातवीं शताब्दी से माना जाता है। "मनपा क्षेत्र के लोगों ने कई सदियों से बॉन धर्म का पालन किया है। तिब्बती बौद्ध धर्म का निंगमापा संप्रदाय आठवीं शताब्दी से उस क्षेत्र में मौजूद है। गेलुग संप्रदाय का उदय पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ।...माना जाता है कि मनपा क्षेत्र में तिब्बती बौद्ध धर्म का प्रसार सातवीं शताब्दी में शुरू हुआ था।"[15] बाद में मनपा जनजाति ने तिब्बती बौद्ध धर्म को

अपनाया है, जो बॉन का अनुयायी थे। "हालांकि यह कहा जाता है कि मनपा समाज, खासकर तवांग में बौद्ध धर्म के प्रवेश ने बॉन पुजारियों को अंधेरे में दबा दिया था, फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बाद के वक्त में बॉन धर्म के ढेरों लक्षणों को बौद्ध धर्म में स्वीकार और समाहित कर लिया गया।"[16]

मनपा जनजाति में तिब्बती-बौद्ध धर्म एक बड़ी ताकत के साथ उभरा है। बौद्ध धर्म के साथ-साथ बॉन विश्वास को भी स्वीकार किया गया है, जो जादू और तंत्रवाद का मिश्रण है। यद्यपि मनपा बौद्ध धर्मावलंबी हैं, वे विभिन्न आत्माओं और देवताओं में भी विश्वास रखते हैं। बुराई को टालने एवं बुरी आत्माओं को भगाने का भी अभ्यास किया जाता है। मनपा समाज ने पुराने बॉन धर्म के अवशेषों को बरकरार रखा है। अनिवार्य रूप से बौद्ध होने के बावजूद पुरानी मान्यताओं और रिवाजों का पालन अभी भी मनपाओं द्वारा किया जाता है। पवित्र तिब्बती धर्मग्रन्थों पर आधारित रूढ़िवादी बौद्ध धर्म के अलावा, स्थानीय देवताओं का भी एक पंथ है। उनकी पूजा से जुड़ी प्रथाओं को बॉन कहा जाता है। "बौद्ध धर्म की शुरुआत के बावजूद किसी प्रकार के प्राकृतिक संकट, जैसे – फसल का नष्ट होना, महामारी और मृत्यु, की स्थिति में मनपा लोगों के मन में डर छिपा होता है। ऐसे मामलों में मनपा लोग बौद्ध रीति-रिवाजों के पालन के साथ-साथ बॉन देवताओं की आराधना के पारंपरिक तरीकों का भी सहारा लेते हैं।"[17]

मनपा गाँव के ऊँचे पहाड़ों पर धार्मिक झंडे लहराये जाते हैं। मनपाओं का दृढ़ विश्वास है कि जब ये झंडे लहराते हैं, तो इसके आस-पास का परिवेश शुद्ध रहता है। इन झंडों पर एक सूत्र 'ओम मणि पेम हम' छपा रहता है। "जमीथांग क्षेत्र के लुम्पो के मनपा गाँव में विभिन्न रंगों का एक झंडा दिखाई पड़ता है। ध्वज का शीर्ष नीले रंग का होता है जो बॉन का रंग है, उसके बाद पीला रंग है, जो गेलुक्पा संप्रदाय का रंग है। अगला रंग

लाल है, जो न्यिंगमापा का प्रतिनिधित्व करता है और उसके बाद सफ़ेद रंग जो सैखपा का प्रतीक है। यह स्थिति अपने आप में बौद्ध धर्म और मनपाओं के पारंपरिक धर्म के समन्वय की कहानी बताती है। तवांग जिले के कई मनपा गाँवों में इस तरह के झंडे लहराते हैं।"[18]

7) त्योहार: माना जाता है कि मनपा जनजाति में एक समृद्ध उत्सव संस्कृति है। वे सालभर में बहुत सारे त्योहार मनाते हैं। ये त्योहार मनपा जनजाति की एकता, संस्कृति, परम्पराओं और जीवन शैली को उनके रीति-रिवाजों, नृत्य, संगीत, भोजन आदि के माध्यम से प्रदर्शित करते हैं। इस आदिवासी समुदाय के कुछ प्रमुख त्योहारों में लोसार, चोस्कर और टोरग्या अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

(i) **लोसार :** लोसार सबसे महत्वपूर्ण मनपा त्योहारों में से एक है, क्योंकि यह नए साल की शुरुआत का प्रतीक है। ये हर साल फरवरी या मार्च के महीने में मनाया जाता है और यह पंद्रह दिनों तक चलता रहता है। यह त्योहार कुछ इस तरह मनाते हैं – "नव वर्ष के पहले दिन को स्थानीय रूप से 'लामा लोसार' के रूप में जाना जाता है।...घर के सभी लोगों को नए साल की शुभकामनाएँ देने के लिए हर घर में लामाओं को बुलाया जाता है। त्योहार के दूसरे दिन को 'सियानो लोसार' या 'किंग लोसार' के रूप में जाना जाता है, क्योंकि पुराने दिनों में राजा इस दिन एक-दूसरे से मिलने के लिए जाते थे। इस त्योहार में लोग एक-दूसरे से मिलते हैं, एक-दूसरे को शुभकामनाएँ देते हैं और बच्चों के लिए खेल का आयोजन करते हैं। तीसरे दिन जिसे 'यूइलहा लोसार' के नाम से जाना जाता है, घर-घर धार्मिक झंडे फहराए जाते हैं और लोग स्वास्थ्य और समृद्धि के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं।"[19]

(ii) **टोरग्या :**टोरग्या त्योहार अरुणाचल प्रदेश के तवांग जिले के तवांग मठ में मनपा जनजाति के लोगों द्वारा मनाया जाता है। यह त्योहार आने वाले वर्ष में अच्छे भाग्य के

लिए भगवान से प्रार्थना करने, सभी बुरी आत्माओं को बाहर निकालने और सभी प्राकृतिक आपदाओं को गाँव से दूर करने के लिए मनाया जाता है। यह त्योहार तीन दिनों तक चलता है, जिसके दौरान लामा सामूहिक रूप से 'टोरग्या चोखार' नामक धार्मिक ग्रंथ का पाठ करते हैं। त्योहार को बहुत ही उत्साह के साथ मनाया जाता है, जहाँ लोग नृत्य करते हैं और आनंद लेते हैं। यह त्योहार आदिवासी जीवन शैली, रीति-रिवाजों और संस्कृति के वास्तविक पक्ष को प्रकट करता है। "इस अवसर पर शानदार ढंग से तैयार की गई पोशाक और अद्भुत मुखौटे पहनकर लामाओं द्वारा नृत्य प्रस्तुत किया जाता है। कई प्रकार के नृत्य गंभीर और आकर्षक संगीत के साथ प्रस्तुत किए जाते हैं।"[20]

(iii) **चोस्कर :** मनपा लोगों का एक अन्य महत्वपूर्ण त्योहार चोस्कर त्योहार है, जो फसल की कटाई से पहले कीटों को रोकने के लिए मनाया जाता है। यह त्योहार बौद्ध वर्ष के सातवें महीने में मनाया जाता है। इस त्योहार को 'चोईकर' या 'चोस्कर' कहा जाता है। "चोईकर फसलों की सुरक्षा के लिए मनाया जाने वाला एक कृषि त्योहार है। समारोह के आखिरी दिन लामा और समाज के लोग अपनी पीठ पर धर्म ग्रन्थों को लिए जुलूस में गाँव की खेतों में जाते हैं।...जुलूस के आगे दो युवक बंदर के मुखौटे पहनकर नाचते हैं। इन नर्तकों को 'किंगपा' कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि उनकी पोशाक, मुखौटा और हलचल बुरी आत्माओं को डराकर दूर भागा देती है। इस समारोह का महत्व, जैसा कि पहले बताया गया है, फसलों को कीटों और कीड़ों से, जंगली जानवरों से और आँधी से बचाने की आकांक्षा में निहित है और इस तरह यह बेहतर फसल और ग्रामीणों की समृद्धि को सुरक्षित करता है।"[21]

8) नृत्य: हर जनजाति की एक विशेष नृत्य शैली होती है। मनपाओं को भी नृत्य, संगीत और कलाओं का बहुत शौक है। ईश्वर को प्रसन्न करना हो, नई फसल की खुशी मनानी हो या फिर अच्छे स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना हो, यह जनजाति हर मौके को पारंपरिक नृत्य के जरिए मनाती है। रंग बिरंगे कपड़े, मुखौटे और आभूषण की वजह से इन नृत्यों का आकर्षण और भी बढ़ जाता है। जब भी मनपा जनजाति की कला-संस्कृति की बात होती है, मुखौटा नृत्य का जिक्र जरूर आता है। उनके मुख्य नृत्य 'याक नृत्य','शेर और मोर नृत्य', 'सोनी यलो','आजील्हामो पेंटोमाईम','ब्रो' आदि हैं। 'आजील्हामो पेंटोमाईम' मनपाओं के बीच एक लोकप्रिय नृत्य है। 'याक नृत्य' खास तौर पर तवांग मठ के आस-पास रह रहे बौद्ध करते हैं। बौद्ध मनपा याक को समृद्धि का प्रतीक मानते हैं। 'सोनी यलो' नामक नृत्य विशेष अवसरों पर मेहमानों के स्वागत और सम्मान के लिए किया जाता है। 'शेर और मोर नृत्य' शांति और खुशहाली को दर्शाता है। यहाँ के लोगों का मानना है कि संगीत और नृत्य के माध्यम से आप अपने आप को ईश्वर से जोड़ सकते हैं। डॉ जी.एन. शिंदे के अनुसार-"आज वर्तमान समय में भी मोन्पा जनजातियों की सामाजिक धार्मिक अवसरों एवं उत्सवों, त्यौहारों पर इनकी संस्कृति के उल्लास आस्था एवं मुक्तानन्द की छवि को देख सकते हैं। इनके लोककथाओं पर आधारित इनके नृत्य गोन्पा (मंदिर) में सामाजिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत करके मानव के जीवन में नीति एवं उपदेश, दया और अहिंसा, और पड़ोसी देशों में मैत्री का संदेश देने जैसे विषय वस्तु की प्रस्तुति होती है। इनमें मुखौटा नृत्य अत्याधिक प्रसिद्ध है। इन नृत्यों में तांत्रिक प्रविधियों का भी प्रचुर प्रभाव दिखता है। साथ ही एक अन्य नृत्य के द्वारा पक्षी वर्ग के अस्तित्व को मानव द्वारा सुरक्षित रखने का संदेश प्रस्तुत किया जाता है। सभी नृत्यों का अलग-अलग अर्थ है।"[22]

9) आर्थिक स्थिति : आर्थिक रूप से, यह जनजाति अरुणाचल की अधिक समृद्ध जनजातियों में से एक है। इनके जीवन यापन का मुख्य आधार बुनाई, थंगका पेंटिंग, कालीन बनाना आदि है। "मनपा महिलाओं ने पूरी तरह से कताई और बुनाई के कौशल का विकास किया है। वे अपने करघों में रंगीन ऊनी कालीन बनाती हैं, जिन्हें 'कान' के नाम से जाना जाता है। अपने करघों में वे ऊन से 'छुपा', मनपा कोट, भी बुनती हैं। मनपा ऊनी कालीन इतने आकर्षक और लुभावने तरीके से बनाए जाते हैं कि देश और विदेशों के बाजार में इसने महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है।"[23]

मनपा लोग आर्थिक लाभ के लिए जानवरों को भी पालते हैं और ऊन, दूध और दूध से बने उत्पादों का विक्रय करते हैं। वे खेती के लिए पहाड़ी-ढलानों का उपयोग भी करते हैं। "मनपा जनजाति स्थानांतरित और स्थायी प्रकार की खेती करती है। घरेलू जानवरों में मवेशी, याक, गाय, सुअर, भेड़ और मुर्गी पालते हैं और मांस के लिए आदिम तरीकों से शिकार करते हैं। पहाड़ी ढलानों पर फसलें लगाकर मिट्टी के कटाव को रोकने के लिए मनपा लोगों ने कई ढलानों को सीढ़ीनुमा बना लिया है। वे लोग नकदी फसलों जैसे – चावल, मक्का, गेहूं, जौ, मिर्च, कद्दू, सेम, तंबाकू, नील और कपास की खेती करते हैं।"[24]

इसके अलावा इस जनजातीय समुदाय के लोग झूम खेती भी करते हैं। "अनादि काल से मनपा लोग सीढ़ीनुमा और झूम खेती करने के अभ्यस्त हैं। खालेगथांग के मनपा लोग अभी भी झूम खेती करते हैं क्योंकि यह स्थान अपेक्षाकृत कम ऊँचाई पर और जंगल से भरा हुआ है।"[25]

10) मृत्यु संस्कार: मनपा जनजाति में मृत्यु संस्कार की एक विचित्र प्रथा है। वे लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में बहा देते हैं। "मनपा जनजाति के लोग बौद्ध धर्मावलम्बी होते हैं। इस जनजाति के लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ

टुकड़ों में काटकर नदी में बहा देते हैं। शव काटकर नदी में बहाना इनके समाज में पुण्य का काम माना जाता है। इनके समुदाय में दाह संस्कार की परंपरा अन्य समुदाय से कतिपय भिन्न है। यही भिन्नता इनको अन्य समुदाय से अलग पहचान दिलाती है। प्रत्येक समुदाय में जन्म, मृत्यु, विवाह के संस्कार भिन्न-भिन्न विधियों से सम्पन्न किए जाते हैं। इन संस्कारों की अपनी विशेषताएँ हैं और इसे सभी समुदाय के लोग बहुत ही आदर भाव से सम्पन्न करते हैं। इनके संस्कारों में अंधविश्वास और प्राचीन रूढ़िवादिता की मौजूदगी आश्चर्य पैदा करती है, जो इनके समुदाय की विशेषता है।"[26]

शव अगर किसी बड़े लामा या सन्यासिन का हो तो उनके सिर को सुरक्षित रखते हैं और बाद में उसे पूजा के कामों में इस्तेमाल करते हैं। "मनपा लोग बड़े और सम्मानित व्यक्ति का सिर बहाते नहीं बल्कि उसे गाड़ देते हैं और बाद में लामा उस खोपड़ी का इस्तेमाल तांत्रिक पूजा में पात्र के रूप में अमृत रखने या मदिरा पीने के लिए करते हैं।"[27]

काजुहारु मिजुनो की किताब में मनपा जनजाति में दाह संस्कार के चार तरीके बताए गए हैं- "नोरबू के अनुसार मनपा समाज में दाह संस्कार के चार तरीके हैं- शव को पहाड़ी गुफा में रखना, जल समाधि, जमीन में दफनाना और जलाना। पहली विधि में शरीर को लकड़ी के बक्से में रखकर ऊँचे पहाड़ की गुफा में रखा जाता है। यह विधि केवल शिशुओं और बुजुर्गों के लिए अपनायी जाती है। जमीन में दफनाने का रिवाज संक्रामक रोग से मरने वालों के लिए है।...मनपा जनजाति में मृत शरीर के लिए जल समाधि की विधि का प्रचलन है और जलाने का रिवाज कम देखा जाता है। जल समाधि कुछ इस तरह करते हैं- शरीर को 108 भागों में काटकर नदी में फेंक देते हैं। गाँव वालों का मानना है कि दाह संस्कार हवा और आकाश को प्रदूषित करता है और जमीन में दफनाने से कीड़े पैदा होते हैं, लेकिन जल समाधि करने से मछलियों का पोषण, प्रकृति और पारिस्थितिकी तंत्र में योगदान होता है।...हालाँकि मनपा समाज में शव को जलाने का विकल्प धनी लोगों के

लिए ही है, जो इसका खर्च उठा सकते हैं। इस दाह संस्कार में आठ से नौ भिक्षु सूत्र पढ़ते हैं जिनके दक्षिणा और भोजन में बहुत ज्यादा खर्च होता है। लेकिन इसके विपरीत जल समाधि के लिए केवल एक भिक्षु की ही आवश्यकता होती है।"[28]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि मनपा समाज एवं संस्कृति अन्य भारतीय समाज से अलग है। इस जनजाति ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखा है। ये लोग संगीत एवं नृत्य के प्रेमी हैं। इनके यहाँ लोक साहित्य परंपरा से संरक्षित है। मनपा लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। लेकिन इनके यहाँ अन्य धर्मों से कोई भेद-भाव नहीं है। ये अनेक त्योहार मनाते हैं, जो इनकी प्रथाओं से जुड़े हुए हैं। मनपा समुदाय को मुख्य रूप से तीन समूहों में बाँट कर देखा जाता है – खालेगथांग (कलकटांग) मनपा, दिरांग मनपा, तवांग मनपा। आर्थिक रूप से यह समाज उतना समृद्ध नहीं है। यह अपने जीवन-यापन के लिए कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। साथ-ही-साथ यह समाज अपनी कलात्मक कृतियों के लिए भी जाना जाता है। मनपा समाज में ममेरे भाई और बुआ की बेटी के बीच शादी का प्रावधान है। प्रेम विवाह की परंपरा भी इस समाज में है। आधुनिक परिवेश में भी मनपा समाज अपनी भाषा एवं संस्कृति को लेकर जागरूक है। धार्मिक अवसरों एवं त्योहारों पर मनपा लोग गोम्पा में सामाजिक कार्यों का निर्वहन करते हैं।

संदर्भ:

---

[1] माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1998, पृ. 45

[2] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, Lakshi Publishers and Distributors, New Delhi, 2018, pp. 12

"It needs to be stated that the Monpa tribal society is largely divided into seven sub groups in respect of their language. The sub-groups are known as the Dirang Monpa, Pangchen Monpa, But Monpa, Chug Monpa, Lish Monpa, Tawang Monpa and Kalaktang Monpa." (अनुवाद मेरा)

[3] Verrier Elwin, Democracy In Nefa, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1965, pp.61

"No salary is paid to the tsorgen. All householders of the village are, however, required to give him blankpas. The blankpa is counted as equivalent to one man's labour for one day and may be rendered either as service or by payment in cash or kind." (अनुवाद मेरा)

[4] Christoph Von Furer-Haimendorf, Highlanders of Arunachal Pradesh: Anthropological Research in North-East India, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1982, pp. 149

> "Within the Kameng District the Monpas, style of house building varies with the differences in altitude. Whereas the Monpas of the relatively low lying Kalaktang area build largely in wood, those of Dirang use mainly stone as building material though the super-structure of houses as well as verandahs are made of wooden planks. In the Tawang region, where settlements lie at altitudes between 6,000 and 12,000 feet, the entire outer shell of houses is usually made of stone, while wood is employed in the interior and in the shape of stout planks covering the roof." (अनुवाद मेरा)

[5] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas Of Tawang : Tradition and Transformation, pp.16

"The most favourable month for the construction of houses in Khalegthang and Dirang area is the ninth month according to the Buddhist calendar,the Dawa Gupa (October-November)."(अनुवाद मेरा)

[6] Ranjay K Singh, Traditional Foods of Monpa tribe of West Kameng, Arunachal Pradesh, Indian Journal of Traditional Knowledge, vol. 6 (1), January 2007, pp. 28

"In these foods, local paneer, dry meat of Yak, solu krepu (dried boiled green chilli), blue green algae [(rimom), called chhiap (chhi means water) in Tawang Monpa dialect], ghee and chhurpi (paneer from yak milk) are more popular among the rich people." (अनुवाद मेरा)

[7] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, pp. 18

"The Monpas can easily be identified from a distance in any assemblage because of the bright colour of their custumes. They prefer outfits of mellow strawberry red. The attires are dyed by both men and women by using a natural dye locally known as choi. The Monpas use black caps made of yak's fur which is known as Sham by the Tawang Monpas while the other Monpas call it Yamu. Speciality of the skullcap of the Monpas is that there are four tassel like projections of about six inches in length." (अनुवाद मेरा)

[8] Verrier Elwin, The Art of The North-East Frontier of India, North-east Frontier Agency, Shillong, 1959, pp. 68

"They are artistic too, even if their art is sometimes restricted by poverty to the love and decoration of flowers. But they nearly all have pretty things – a coloured sash, a decorated hat, a silver sword, and little cups exquisitely painted of wood or China,…Monpa dress is

of the typical Kalimpong type, but the women make a charming cloth, which is used as a shawl, sash or coat, of a maroon colours decorated with stylized figures of men and animals. Bhutanese influence is also evident, and a certain amount of cloth is imported from Bhutan and Tibet while brocades and other silks from Banaras are used for women's caps and arpons and in hats and shirtings for men. They also make beautiful carpets." (अनुवाद मेरा)

[9] उद्धृत, Juri Dutta, Ethnicity in the Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A new Historicist Approach, Adhyayan Publishers & Distributors, New Delhi, 2012, pp. 30

"R.N. Bagchi says, "Marriage by abduction and capture is not in vogue in the (Monpa) society…marriage with one's own cross cousin is permissible. Payment of bride price is a social custom. One woman may act as wife of two brothers. Divorce is traditionally forbidden in Monpa society"(अनुवाद मेरा)

[10] S. Dutta Choudhury (Editor), Gazetteer of India Arunachal Pradesh: East Kameng West Kameng and Tawang Districts, Government of Arunachal Pradesh, 1996, pp. 93

"Monogamy is the normal rule of marriage, but a man can take a second wife as in Tawang only with the consent of his first wife…The bride-price usually comprises one horse and one yak, and normally it is paid when a boy expresses his desire to marry a girl…Payment of bride-price for settlement of a marriage is not as rigid custom among the Monpas as it is in many other tribal societies. If a man is too poor to afford the bride-price, the liability to pay it may pass on to his son. A dowry of ornaments, utensils and clothes is normally given to a daughter in marriage when she goes to her husband's house. A man

of wealth may even give his daughter some land or cattle. (अनुवाद मेरा)

[11] Christoph Von Furer-Haimendrof, Highlanders of Arunachal Pradesh: Anthropological Research in North-East India, pp. 161

"The Monpa term for a marriage arranged by negotiation is zeroo in the Tawang dialect and phunban in the Dirang dialect. A love marriage concluded with or without the parents' consent is called leh in all dialects, and the term for elopement is krigu." (अनुवाद मेरा)

[12] S. Dutta Choudhury (Editor), Gazetteer of India Arunachal Pradesh: East Kameng West Kameng and Tawang Districts, pp. 94

"Among the Kalaktang Monpas monogamy is the general rule as among the other groups of the Monpas, but a man can marry more than one woman if his social and economic status permits him to do so. Marriages are normally arranged by the parents or near relatives. The negotiation is initiated by the boy's parents who make an approach to the parents of the girl. They do not go to the girl's house direct but stay in another house of the village and apprise the girl's parents of the purpose for which they have come. The negotiation starts with the boy's parents offering a jar of local drink and a piece of cloth (khado) to the girl's parents, who receive the offer if the marriage proposal is acceptable… If both the parties agree and decide for the marriage, a date of wedding is fixed on the advice of a lama." (अनुवाद मेरा)

[13] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, pp. 50

"The Monpas are seen to decorate a substancial space in the best part of their houses by setting up altars where small statues of metal or clay of Lord Buddha and the incarnate *Lamas* are kept with

reverence and worshipped with rows of lighted butter lamps and incense sticks." (अनुवाद मेरा)

[14] वही, पृ .48

"The Lamas were the monks of the Tibetan-Buddhism but were allowed to perform rituals in the houses of the laities as priests. Perhaps, this was the beginning of the stage of syncretised form of Buddhism in Tibet that in the subsequent period reached the Monpas." (अनुवाद मेरा)

[15] Kazuharu Mizuno, Himalayan Nature and Tibetan Buddhist Culture in Arunachal Pradesh, India, International Perspectives in Geography AJG Library 6, 2015, pp.58

"People in the Monpa area have followed the Bon religion for many centuries. The Nyingma sect of Tibetan Buddhism has existed in that area since the eighth century; the Gelug sect arose in the fifteenth century…The spread of Tibetan Buddhism in the Monpa area is believed to have begun in the seventh century." (अनुवाद मेरा)

[16] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, pp. 46

"Though it is said that once Buddhism made an entry in the life of the Monpas in general and Tawang in particular and the Bon priests and Shamans were pushed to the obscure locations still, one cannot deny the fact that at a later period many of the traits of Bon have been accepted and assimilated in the Buddhism followed by the Monpas of Tawang and nearby regions. It gave a colour of syncretism in the Buddhism followed by the Monpas." (अनुवाद मेरा)

[17] वही, पृ. 51

"Even after the introduction of Buddhism the laities nurture a hidden fear in their minds whenever there is a natural calamity such as

failure of crops, spread of epidemics and deaths. In such cases the people take recourse to the traditional mode of propitiation of the Bon gods along with the observance of Buddhist rituals." (अनुवाद मेरा)

[18] वही, पृ. 52

"In the Monpa village of Lumpo in the Zemithang region a flag is observed with various colours.The top of the flag is blue which is the colour of Bon, followed by yellow the colour of the Gelukpa sect. Next is the red, which represents Nyingmapa, followed by white, which is the symbol of Saikhapa. This phenomenon itself tells a syncretic tale and such flags flutter in many Monpa villages of the Tawang district." (अनुवाद मेरा)

[19] S. Dutta Choudhury (Editor), Gazetteer of India Arunachal Pradesh: East Kameng West Kameng and Tawang Districts, pp. 77

"The first day of the Buddhist new year is locally known as Lama Loser…Lamas are called in every house to perform ceremonies for a happy new year for all the inmates of the house. The second day of the festival is known as Cyano Loser or kings' Loser for in the old days the kings used to visit each other on this day. In commemoration of the day friends meet each other to wish a happy Loser and a sports meet of children is held. On the third day known as Yuilha Loser religious flags are hoisted on house-tops and the people pray to god for health and prosperity." (अनुवाद मेरा)

[20] वही, पृ. 77

"On this occasion, colourful dances are performed by the lamas dressed in magnificently designed costumes and fantastic masks. A variety of dances including devils' dance, dance of the good spirits and so on are presented to the accompaniment of solemn and fascinating music composed with drums, cymbals etc." (अनुवाद मेरा)

[21] वही, पृ. 78

"Choikor is an agricultural ceremony performed for the protection of crops. On the last day of the ceremony, the lamas and laity go round village cultivation fields in a procession led by a senior lama with the secred texts on their back…In front of the procession two young men in wooden monkey masks and wooden replicas of the phallus go on dancing. These dancers are called kiengpa. It is believed that their dress, mask and movements would frighten away the evil spirits. The significance of this ceremony, as already indicated, lies in the desire to save crops from pests and insects, wild animals and hailstorm, and thus secure better harvest and prosperity of the villagers." (अनुवाद मेरा)

[22] डॉ. जी. एन. सिंदे (संपा.), लोक साहित्य: वैश्विक परिदृश्य, यशवंत महाविद्यालय, महाराष्ट्र, 2016, पृ. 156

[23] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, pp. 23

"The Monpa women throughout have developed the skill of spinning and weaving. They make colourful woollen carpets in their looms known as kan. In their looms they also weave chhupa, the Monpa coat, out of wool. The Monpa woollen carpets are so fascinating and eye catchingly designed that the items have easily captured a wide market in the country and abroad." (अनुवाद मेरा)

[24] Dr. M.C. Arunkumar, The Tribes of Arunachal Pradesh, Maxford Books, Delhi, 2012, pp. 226

"The Monpa practice shifting and permanent types of cultivation. Cattle, yaks, cows, pigs, sheep and fowl are kept as domestic animals, and meat is hunted using primitive methods. To prevent soil erosion by planting crops on hilly slopes, the Monpa have terraced

many slopes. Cash crops such as rice, maize, wheat, barley, chilli pepper, pumpkin, beans, tobacco, indigo and cotton are planted." (अनुवाद मेरा)

[25] Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition and Transformation, pp. 19

"Since time immemorial the Monpas were in the habit of terrace and slash and burn type of cultivation. Slash and burn or jhum cultivation is still in vogue among the Monpas of Khalegthang area as it is in relatively lower elevation and full of undergrowths." (अनुवाद मेरा)

[26] उपमा शर्मा, शव काटनेवाला आदमी: मनपा जनजाति का पारंपरिक यथार्थ (लेख), मधुमती (पत्रिका), वर्ष-60, अंक-11, ब्रजरतन जोशी (संपा.), साहित्य अकादेमी, उदयपुर, राजस्थान, नवम्बर, 2020, पृ. 66

[27] भारत भारद्वाज (संपा.), पुस्तक वार्ता(पत्रिका), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र, मार्च-अप्रेल 2015, पृ . 28

[28] उद्धृत, Kazuharu Mizuno, Himalayan Nature and Tibetan Buddhist Culture in Arunachal Pradesh, India, pp. 74

"According to Norbu, there are four ways to process a dead body. They are placement of the body in a mountain cave; water burial; ground burial, and cremation. With the first method, the body is placed in a wooden box, transported to a high mountain, and placed in a cave. This is used only for infants and the elderly. Ground burial is restricted to deaths from infectious diseases and confirmed felons…Water burial is common and cremation is rare among the Monpa people. Carrying out a water burial involves cutting the body into 108 parts and throwing them into the river. Villagers believe that cremation pollutes the air and sky and that ground burial produces insects, but water burial feeds fish and contributes to nature and ecosystems…However, in reality, cremation is an option but only for

wealthy people owing to its expense. At a cremation, eight to nine monks recite sutras, which demands a large expenditure to cover the monks' fee and the cost of their meals. In contrast, only one monk is required for a water burial." (अनुवाद मेरा)

अध्याय-3

'शव काटनेवाला आदमी': संवेदना के विविध आयाम

3.1 मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

3.2 शव काटने की प्रथा : उपन्यास का केंद्रीय विषय

3.3 उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप

3.4 दलाई लामा का भारत आगमन

3.5 भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज

3.1 मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

अरुणाचल प्रदेश के पश्चिमी कामेंग जिले और तवांग जिले के कुछ हिस्सों में मनपा एकआदिम जनजाति है। यह जनजाति मोंगोलोएड वंश के अंतर्गत आती है। उनके अपने रिवाज और सामाजिक नियम हैं। मनपा जनजाति के सदस्य स्वभाव से शांत और कलात्मक होते हैं। मनपा जनजाति द्वारा बनाई गई लकड़ी की नक्काशी के काम, कालीन और बांस के बर्तन प्रसिद्ध हैं।

पूर्वोत्तर में आदिवासियों की आबादी सर्वाधिक है। मनपा जनजाति अरुणाचल प्रदेश की महत्वपूर्ण जनजाति है। इस जनजाति के लोग मुख्य रूप से वांगछांग, आराक, झान, सुरपी या लिबिसूरा, छामीन, थुकपा और खापसे आदि व्यंजन का प्रयोग करते हैं। मनपा जनजाति बौद्ध धर्म में आस्था रखने वाली जनजाति है। चावल इन लोगों का मुख्य भोजन है। ये लोग याक आदि जानवरों का मांस खाते हैं। लामा (पुजारी) लोग शाकाहारी होते हैं, पर जनसामान्य के लिए मांसाहार प्रतिबंधित नहीं है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के एक प्रसंग में उपन्यासकार ने लिखा है- "आने सांगे ने अपने हाथों से पिसे हुए मड़वा का झान पकाया, सूखे कुकुरमुत्ते और सुखी काई में घी और सुरपी डालकर व्यंजन तैयार किया, सूखे याक के गोश्त में उबली हुई सफेद मिर्ची डालकर एक दूसरा व्यंजन तैयार किया, लाल मिर्ची को पीस कर छामिन बनाया और गुईसेंगमू व अन्य दोनों महिलाओं को परोसने का दायित्व सौंपकर खुद भी जमीन पर आसन बिछाकर खाने में जुट गयी।"[1]

प्रत्येक समाज में कुछ धार्मिक विश्वास प्रचलित होते हैं। धार्मिक विश्वासों में पड़कर मानव अज्ञानतावश बहुत कुछ ऐसा करने लगता है जो कई बार उचित प्रतीत नहीं होता।

पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही परंपराएँ एवं मान्यताएँ ही, जो बिना किसी तर्क-वितर्क के श्रद्धा और विश्वास की चीज़ बन जाती हैं, अंधविश्वास कहलाती हैं। कई तरह के अंधविश्वास आज भी किसी न किसी रूप में हमारे समाज में विद्यमान हैं, वह चाहे धार्मिक अंधविश्वास हो या सामाजिक। निर्मल कुमार बोस के मतानुसार- "सभी जातियों का वास्तविक जीवन, चाहे वे आदिम जातियाँ हो या सुसंस्कृत, विविध अंधविश्वासों के सहारे चलता है। यद्यपि उनमें से कुछ जातियाँ अवश्य ही साल में कुछ दिन अपवित्र वातावरण से अलग निश्चित स्थानों में तनिक उन्नत धर्म का पालन करती हैं। हमारा तात्पर्य यह सिद्ध करना नहीं है कि आदिवासी जातियाँ सुसंस्कृत लोगों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। वास्तव में हम सभी एक ही कूची से रंगे गए हैं। इसीलिए जब हम अपनी सांसारिक दृष्टि की तुलना इन सीधे-सादे लोगों की जीवन दृष्टि से करें तो हमें चाहिए कि उसमें विनम्रता हो, ताकि हम उनके अपने धर्मों को गहराई से समझ सकें।"[2] कई तरह के अंधविश्वास मनपा समुदाय में भी प्रचलित हैं,जिसकी चर्चा करते हुए येशे दोरजी थोंगछी 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में एक पात्र के माध्यम से कहते हैं- "याद आता है गाँव के पास शव काटनेवाला स्थान ह्योरमाँग, जहाँ रात के अंधेरे में प्रेतात्माएँ चमड़े के पात्र में पाशाओं को हिलाते हुए खतरक-खतरक की आवाज करते हुए नीचे धम्म से पटकते हुए अट्टहास करते थे, जहाँ स्त्री और पुरुष की प्रेतात्माएँ शोरगुल मचाती हुई, नाच-गान करती हुई दूनछांग करती थी, जहाँ पूर्णिमा और अमावस्या की रात में प्रेतात्माएँ ढोलक बजाकर, शंख फूँककर, जालिंग रोदिंग फूँककर पूजा करती थी, हाल ही में मरी किसी महिला की प्रेतात्मा अपने बिछड़े हुए प्रियजनों की याद में जोर-जोर से विलाप करती थी।"[3] ज़ाहिर है कि किसी भी समाज में कुछ सामाजिक-धार्मिक मान्यताएँ होती हैं जो कालांतर में अंधविश्वास का रूप ले लेती

हैं। इन अंधविश्वासों के पीछे कोई तर्क तो नहीं होता, लेकिन सामाजिक-धार्मिक रूप से ये अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी मानी जाती हैं। आदिवासी समाजों में ऐसे बहुत-से अंधविश्वास प्रचलित होते हैं।

सदियों से आदिवासी समुदाय अपने सामान्य रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों के साथ जीवन जीता आया है। भारतीय समाज में कुछ विशेष स्थानों को अच्छा और कुछ को बुरा समझा जाता रहा है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में ह्वोरमाँग (शव काटने का स्थान) के बारे में उपन्यासकार बताता है कि – "कहा जाता है कि वह स्थान भूत, पिशाच, प्रेतात्मा, चुड़ैल आदि का अड्डा बन चुका है। 'ॐ मने पेमे हुँ' मंत्र जिस शिला लिपि पर खुदा हुआ है, उसके सामने रात में, कभी-कभी शव काटने के लिए जीवित आदमी के न रहने पर दिन में ही भूत-प्रेत पासा लेकर जुआ खेलने बैठ जाते हैं! वैसे समय में अगर कोई जीवित आदमी उस तरफ जाये तो उसकी आत्मा को भी वे जुए के अंदर कैद कर लेते हैं। कहा जाता है कि छुरवी गाँव के खेतों के आखिरी छोर पर डरावने जंगल के बीच बहने वाली छोटी नदी को पार करने के बाद ह्वोरमाँग से आने वाली प्रेतात्माओं की हँसी, झगड़े, रुलायी की आवाज सुनाई देती है।"[4]

कई आदिवासी समाजों की सामाजिक संरचना में गोत्र एवं राशि व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्थान होता है। विवाह, परिवार एवं मृत्यु जैसे प्रसंगों में गोत्र एवं राशि का महत्व विशेष रूप से सामने आता है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में मनपा समाज में गोत्र एवं ज्योतिषीय गणना के महत्व को इस प्रकार दिखाया गया है – "नहीं ! आने बनने की जगह मैं तुम्हारी पत्नी बनना पसंद करूंगी। मगर हम दोनों की शादी किस्मत में नहीं लिखी हुई है। हम दोनों की शादी करवाने के लिए हमारे माता-पिता लामाओं के पास कुंडली दिखाने के लिए गए थे। गणना कर क्या बताया गया, क्या तुम नहीं जानते?...सभी

लामाओं ने बताया कि मेरी मौत आ रही है।"[5] रिजोम्बा की इस बात से स्पष्ट होता है कि मनपा जनजातीय समाज में विवाह जैसी परम्पराओं में कुंडली मिलाना और ज्योतिषीय गणनाओं आदि का ध्यान रखना प्रचलन में रहा है।

मानव जन्म लेता है तो उसकी मृत्यु भी निश्चित है। किसी भी समुदाय में जब किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है तो उस समाज में प्रचलित तरीके से उसका शव-संस्कार किया जाता है। मनपा समाज में शव-संस्कार की एक अनोखी प्रथा है, जिसमें मृत शरीर के एक सौ आठ टुकड़े करने के बाद उन्हें नदी में फेंक दिया जाता है। नदी में फेंकने से पूर्व थाम्पा (शव काटनेवाला आदमी) मृत व्यक्ति के घरवालों से मृत व्यक्ति एवं उसके माता-पिता की राशि के बारे में पूछता है, उसके बाद टुकड़ों को नदी में विसर्जित करता है। उपन्यास के एक प्रसंग से इस बात को समझा जा सकता है- "सिर को नदी में फेंकने से पहले उसने लड़के से पूछा, "तुम्हारे पिता के माता-पिता के नाम जानते हो?" "नहीं जानता।" "पिता की राशि?" "लांग (वृष)।" "ठीक है।"[6] मृत व्यक्ति के टुकड़ों को नदी में विसर्जित करते समय थाम्पा उस मृत व्यक्ति के माता-पिता की राशि का उच्चारण कर कुछ रीति-नियमों का पालन करता है।

मनपा आम तौर पर तिब्बती बौद्ध धर्म के गेलुग्पा संप्रदाय के अनुयायी हैं। फिर भी, पूर्व-बौद्ध बॉन(Bon) विश्वास के कुछ तत्व मनपा लोगों के बीच बने रहे। मनपा समाज में हर घर में, बुद्ध की मूर्तियों के साथ रखी गई वेदियों में छोटे कप और जलते हुए घी के दीपक चढ़ाये जाते हैं। इस समाज में भी धर्म को मानवीयता के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों के पीछे की मान्यता यही होती है कि वह हमें गलत चीजों एवं गलत प्रभावों से बचाता है। अच्छी प्रवृतियों को ही धर्म का मुख्य अंग माना जाता है और इन्हीं से धार्मिक स्वरूप को जोड़कर देखा जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में मनपा समाज के

संदर्भ में इसे निम्न रूप में स्पष्ट किया गया है – "घर में, गाँव में या गोम्पा में होने वाले अनेक पूजा-अनुष्ठान के दौरान वे लोग बचपन से ही इस तरह के श्लोकों को सुनते रहे है। तिब्बती भाषा में लिखे गए धर्मग्रन्थों के मंत्र या श्लोक वे लोग समझ नहीं पाते। इसके बावजूद ये श्लोक या मंत्र उनके लिए अत्यंत पवित्र थे। इनको पढ़कर या गाकर पूजा-पाठ करने से सारे कार्य सिद्ध होते हैं, मनुष्य के तन-मन का कल्याण होता है, भूत-प्रेत, चुड़ैल और अशुभ शक्तियों का नाश होता है, मृतक की आत्मा को मोक्ष मिलता है।"[7] इन्हीं पूजा-अनुष्ठानों के द्वारा समुदाय एवं कृषि आदि की रक्षा, जीवन में सुख शांति तथा सम्पूर्ण समृद्धि की कामना की जाती है।

मनपा समाज में नव वर्ष पर लगातार 15-30 दिनों तक 'लोसेर महोत्सव' मनाया जाता है। इस उत्सव के दौरान नए का स्वागत करने और पुराने का उपयोग करने के लिए घर की सफाई करते हैं। इस उत्सव के दौरान अच्छे स्वास्थ और समृद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है। लोग इस उत्सव के दौरान बौद्ध धर्म ग्रंथ को पढ़ते हैं और घरों के आस-पास घी के दीपक जलाते हैं तथा तरह-तरह के व्यंजनों एवं खाद्य पदार्थों का भी आनंद उठाते हैं। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में इस महोत्सव की चर्चा उपन्यासकार ने की है- "गाँव-गाँव, घर-घर में आयोजित होने वाला लोसेर महोत्सव। लोसेर के समय खाने के लिए लोग साल भर तक सँजोकर रखा गया लजीज खाद्य पदार्थ बाहर निकालेंगे, याक के घी के साथ विभिन्न स्वादिष्ट खापसे तैयार करेंगे, नये-नये कपड़े, जूते, टोपी खरीदेंगे या सिलवायेंगे और नववर्ष के दिन मुर्गे के पहले बांग के साथ बिस्तर छोडकर अपने-अपने घर का दरवाजा बंद कर परिवार के सारे सदस्य याक का सूखा गोश्त, विभिन्न शस्य देकर पकाया गया स्वादिष्ट थुकपा खाएँगे, घी में अंडा देकर गर्म की गई आराक पीयेंगे..."[8]

मनपा समाज में टोरग्या उत्सव का भी बहुत महत्व होता है। इस उत्सव में विभिन्न गाँवों के लोग बड़े-बूढ़े, बच्चे एवं महिलाएँ गोम्पा के पास इकठ्ठा होते हैं, जहाँ पर लामाओं द्वारा नृत्य किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में इसे इस प्रकार व्यक्त किया गया है – "तवांग गोम्पा में जब टोरग्या पूजा होती थी, लामा लोग जब विचित्र पोशाक पहनकर तीन दिनों तक नृत्य करते थे, गोम्पा के बाहर जब विशाल मेला लगता था, तब नृत्य देखने के लिए, वांग लेने के लिए, खरीददारी-बिक्री करने के लिए हजारों लोग एकत्रित होते थे।"[9]

मनपा जनजाति में अनेक प्रकार के त्यौहार एवं पूजा का प्रावधान है। इसमें से ज्यादातर पूजा या त्यौहार बौद्ध धर्मों से संबंधित है। ऐसे ही उत्सवों में से एक उत्सव 'कालचक्र पूजा' का है। वैसे तो आदिवासी समाज में पाप-पुण्य जैसी धारणा प्रायः नहीं होती है, परंतु बौद्ध धर्म को मानने वाले मनपा समाज में कालचक्र पूजा का उद्देश्य ही पापों को धोकर पुण्य अर्जित करने का है। उपन्यासकार के शब्दों में – "कालचक्र पूजा में भाग लेकर कई जन्मों के पापों को धोकर पुण्य अर्जित करने के लिए और दलाई लामा का दर्शन करने के लिए देश-विदेश से हजारों बौद्ध धर्मावलम्बी भक्तों का आगमन हुआ था। महायान बौद्धों की श्रेष्ठ तांत्रिक पूजा ही कालचक्र पूजा है।...ऐसी मान्यता है कि जो आदमी जीवन में तीन बार इस पूजा में शामिल होकर मंत्रोच्चारण सुन सकता है, इस अवसर पर दलाई लामा के दिए हुए धर्म उपदेश को सुन सकता है और वांग अर्थात् आशीर्वाद ले सकता है, उसे परम पुण्य प्राप्त होता है और मरने के बाद उसकी आत्मा कईपेमे यानि स्वर्ग पहुँच जाती है...।"[10]

उपर्युक्त पूजा की एक मान्यता यह भी है कि इस पूजा में शामिल होने वाले लोगों को अपने जीवन में किए गए बुरे कर्मों को त्यागने आदि के संदर्भ में शपथ लेना पड़ता है। मनपा समाज में इस कालचक्र पूजा के दौरान बुज़ुर्गों को सन्यास आश्रम की ओर अर्थात

मनुष्य जीवन के मोह-माया को त्याग कर सन्यासी के रूप में जीवन यापन शुरू करने के लिए प्रेरित भी किया जाता है। प्रस्तुत उपन्यास के एक प्रसंग में इसे देखा जा सकता है- "कालचक्र पूजा के समय भक्तों को अपने भीतर की तीन बुरी आदतों में से किसी एक का त्याग करना उचित है। ऐसी बुरी आदते हैं- शराब-तम्बाकू आदि का सेवन, मछली-मांस का भोजन और जुए के प्रति आसक्ति। इसके अलावा इसी पूजा के दौरान जिन बुज़ुर्गों ने माला और मने छोकर (हाथ से घुमाया जाने वाला धर्मचक्र) को ग्रहण नहीं किया होता, वे माला जपना और मने छोकर घुमाना शुरू करते हैं।"[11]

मनपा समाज में जीवन यापन के लिए मुख्य रूप से खेती एवं पशु पालन किया जाता है। गाय, भेड़, याक, घोड़े आदि को पालना जीवन यापन के मुख्य साधन हैं। इस कार्य में घर के लड़के और लड़कियाँ माता-पिता और बुज़ुर्गों की सहायता करते हैं। इस समाज में समतामूलक श्रम का खास महत्व है। सहयोग की भावना के कारण परिवार के सभी लोग आपस में जुड़े रहते हैं। अपने घर के कार्यों के अलावा पड़ोसियों के कार्यों में भी मदद करने का रिवाज इस समाज में मौजूद है। इस काम में पुरुष के साथ-साथ महिलाएँ भी शामिल रहती हैं। "पुरुष हो, महिला हो, लड़का हो, बूढ़ा हो सभी बलिष्ठ मनपा गधे की तरह मेहनत करते हैं।...इसमें हिस्सेदारी करनी पड़ती है घर के छोटे बच्चों को भी।...भेड़ चराना, गाय, याक, घोड़ा चराने का काम भी बच्चों को ही करना पड़ता है। जंगल से लकड़ी लेकर आना, जलाशय से पानी लाने जैसे काम भी उन्हें ही करने पड़ते हैं। लड़की होने पर घर में खाना बनाने, खेत में घास साफ करने, कपड़े-लत्ते, बर्तन धोना, बड़ों की देखभाल करने जैसे काम करने पड़ते हैं।"[12]

निष्कर्षत: यह उपन्यास मनपा समाज और संस्कृति की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि यह उपन्यास मुख्य रूप से मनपा समाज में मृत्यु के बाद शव-संस्कार के क्रिया

कलापों को चित्रित करता है, लेकिन उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से मनपा समाज के अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का भी चित्रण किया है। उपन्यासकार ने मनपा समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही मान्यताओं का भी चित्रण किया है। शव काटने की प्रथा, शव काटने वाले की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अलावा उस समाज में मौजूद धार्मिक आस्था एवं अंधविश्वास, विविध सामाजिक परंपरा आदि को भी उपन्यासकार ने उपन्यास में जगह दी है। प्रत्येक समाज की अपनी खास सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान होती है जो उनके विवाह, परिवार, मृत्यु, धार्मिक त्यौहार, रहन-सहन, खान-पान एवं पहनावे आदि में विन्यस्त होती है। येशे दोरजी थोंगछी प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से इन सारी सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण करते हैं।

3.2 शव काटने की प्रथा: उपन्यास का केंद्रीय विषय

भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित अरुणाचल प्रदेश की एक जनजाति है मनपा। बौद्ध धर्मावलम्बी इस जनजाति के लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में बहा देते हैं। शव-संस्कार की इसी रीति पर यह उपन्यास केन्द्रित है। इस उपन्यास का मूल चरित्र दारगे नरबू एक शव काटनेवाला आदमी है, जिसे मनपा लोग 'थाम्पा' कहकर पुकारते हैं। वह अपनी घर-गृहस्थी संभालने में माहिर तथा बातूनी पत्नी गुईसेंगमू तथा गूँगी बेटी रिजोम्बा के साथ नदी के किनारे समाज से दूर सुनसान जगह पर रहता है और तवांग में छोड़ आए अपने परिवार और दोस्तों की याद में खोया रहता है। उसके जीवन के साथ जुड़ी हुई है एक अवतारी सन्यासिन लामा आने सांगे नोरलजम।

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में येशे दोरजी थोंगछी ने मनपा समाज में प्रचलित शव काटने की प्रथा को विस्तार से चित्रित किया है। मनपा समाज में मृत शरीर को क्रियाकर्म करने से पहले एक सौ आठ टुकड़ों में काटे जाने की प्रथा है। यह क्रिया स्त्री और पुरुष के साथ अलग-अलग तरह से सम्पन्न होती है। आम नागरिक और साधु-सन्यासी के शरीर को भी एक सौ आठ टुकड़ों में काटने का तरीका अलग-अलग है। उपन्यास में दारगे नरबू को उसका फूफा लेकी शव काटने का तरीका सिखाते हुए कहता है– "आओ जव, इस पैर को पकड़ो। बायाँ पैर नहीं, दायाँ पैर। मर्द होने पर पहले दायाँ पैर, दायें हाथ से काटना शुरू करना चाहिए, औरत होने पर बायीं तरफ से शुरुआत करनी चाहिए। सिर के साथ एक सौ आठ टुकड़े करने चाहिए। अच्छी तरह देखना शरीर के किन अंगों को काटकर एक सौ आठ टुकड़े बनाए जाते हैं। साथ-साथ गिनती करना।"[13] शव को काटने के इसी तरह के और भी कई नियमों का उल्लेख अलग-अलग प्रसंगों में इस उपन्यास में हुआ है।

मनपा समाज में किसी व्यक्ति के मृत शरीर को रखने के भी अलग-अलग तरीके होते हैं, पुरुष के लिए अलग और स्त्री के लिए अलग। पूर्वोत्तर भारत के अलावा अन्य भारतीय समाज में भी मृत शरीर को दिशा विशेष की तरफ सिर और पैर करके रखने की प्रथा है। मनपा समाज में यह प्रथा कुछ इस प्रकार है- "देखो दारगे, मर्द की लाश होने पर उसे औंधा करके रखना चाहिए, औरत की लाश होने पर उसे चित्त रखना चाहिए।"[14]

उपन्यासकार ने इस उपन्यास में मनपा समाज की इस प्रथा को बहुत ही बारीकी से इसकी पूरी विभत्सता के साथ चित्रित किया है। शव काटने की प्रक्रिया के बारे में पढ़ते हुए हमारी आँखों के सामने एक ऐसा दृश्य प्रस्तुत हो जाता है जिससे हमारे मन में आश्चर्य, घृणा, जुगुप्सा, भय आदि कई भाव एक ही साथ उठने लगते हैं। स्त्री और पुरुष के मृत शरीर को अलग-अलग नियमों के साथ काटकर नदी में विसर्जित करना मनपा समाज का परंपरागत नियम है। उपन्यासकार मनपा समाज को चित्रित करने में पूरी तरह से घुल-मिल गया है। एक स्त्री के मृत शरीर के काटने की प्रक्रिया को व्यक्त करते हुए उपन्यासकार कहता है कि – "दारगे के दाव के वार से पहले जुदा होता है बायें पैर के टखने का नीचे वाला हिस्सा, उसके बाद घुटने तक का हिस्सा, उसके बाद दायें पैर के टखने का नीचे वाला हिस्सा, ऊँगली इत्यादि वाला हिस्सा, उसके बाद घुटने तक का हिस्सा आदि नदी की तेज धारा में टुकड़ों में बँटकर बह जाते हैं। इसके बाद बायाँ घुटना, दायाँ घुटना खत्म होने पर हाथों की बारी आ जाती है। पहले नाजुक उँगलियों वाली बायीं हथेली कलाई के पास से, फिर केहुनी के पास से, फिर कंधे के पास से, उसके बाद दायीं हथेली कलाई के पास से, फिर केहुनी के पास से, फिर कंधे के पास से कट जाने के बाद सुंदर स्त्रियों के शरीर सिर विहीन, हाथ विहीन, पैर विहीन होकर, हाथ- पाँव-सिर छिपाकर रखने वाले कछुए की तरह अजीब और बेडौल हो जाते हैं। इस बार दारगे का दाव शरीर के निचले हिस्से की

तरफ बढ़ता है। बायें स्तन, दायें स्तन को काटने के बाद उसे कुछ देर सुस्ताना पड़ता है।...अब उसके दाव का निशाना बनते हैं मांसल नितम्ब, योनि और उसके बाद शुरू होता है शव काटने की पूरी प्रक्रिया का सबसे गंदा और घृणित काम, नारी देह के भीतरी हिस्से को चीरने-काटने का काम। पहले गर्भाशय, फिर गुर्दा, मल, पचे-अधपचे खाद्य के साथ पेट की अंतड़ियाँ, हृदय, फेफड़ा, स्तन, सीना आदि एक सौ आठ टुकड़ों में विभाजित होकर एक सुंदर शरीर वाली एक सुंदर स्त्री पृथ्वी के सीने से लुप्त हो जाती है।"[15]

शव काटने की इस प्रथा में साधु-सन्यासी का शव आम आदमी के शव से बिल्कुल भिन्न तरीकों से काटा एवं विसर्जित किया जाता है। जहाँ आम आदमी के शव को काटकर नदी में विसर्जित किया जाता है, वहीं साधु-सन्यासी के शव को काटने के बाद बाकी शरीर के अंगों को तो नदी में बहा दिया जाता है, लेकिन सिर को सुरक्षित रख लिया जाता है। उपन्यास में इसका ज़िक्र है- "और अगर सिर किसी बड़े लामा या संन्यासिन का हो तो उसे सुरक्षित रखना पड़ता है। उसे अच्छी तरह कपड़े में लपेटकर जमीन के नीचे गाड़ना पड़ता है और एक-दो साल बाद शुभ तिथि देखकर पूजा-पाठ कर खोपड़ी को बाहर निकाल कर उसके ऊपरी हिस्से को पूजा के समय मदिरा रखने के लिए कापलिंग बनाना पड़ता है।"[16]

मनपा समाज में शव संस्कार के इस अनोखे तरीके से अनेक प्रकार के शुभाशुभ संकेत भी जुड़े हुए हैं। "अगर नदी की तेज धारा के साथ सिर ठीक से बह जाता है तो इसे शुभ लक्षण माना जाता है। सबका मंगल होता है।...लेकिन अगर धारा से टकराकर या किसी और वजह से सिर शव काटने वाले स्थान की तरफ बहकर या छिटककर आ जाए, इसका आर्ट होता है कि उसे कुछ और शवों को काटने के लिए तैयार होना पड़ेगा...।"[17]

प्रस्तुत उपन्यास में शव काटने की प्रथा को बहुत ही विस्तार से चित्रित करते हुए उपन्यासकार यह भी बताता है कि शव काटने की प्रक्रिया शुरू करने से पूर्व मंत्रोच्चारण भी किया जाता है। मंत्रोच्चारण के उपरांत ही शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटा जाता है। उपन्यास के बिल्कुल आखिर में आने सांगे के मृत शरीर को काटने से पहले दारगे नरबू मंत्रोच्चार करता है- " 'ओम मने पेमे हुम' मंत्र बुदबुदाते हुए उसने आने सांगे नोरलजम की गरदन पर वार किया।"[18]

शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर ही नदी में विसर्जित किया जाता है। 'एक सौ आठ' की इस विशेष संख्या का संबंध बौद्ध धर्म से माना जाता है। येशे दोरजी थोंगछी अपने साक्षात्कार (परिशिष्ट में संलग्न) में भी यह स्पष्ट करते हैं। बौद्ध धर्म में 108 की संख्या के महत्व को एम.ए.पद्मानाभाचार कुछ इस तरह बताते हैं – "लंकावत्र सूत्र में भी एक खंड है जिसमें बोधिसत्व महामती, बुद्ध से 108 सवाल पूछते हैं। एक अन्य खंड में बौद्ध 108 निषेधों को भी बताते हैं। बहुत से बौद्ध मंदिरों में सीढ़ियां भी 108 रखी गई हैं।"[19] प्रत्येक मनपा व्यक्ति चाहता है कि मृत्यु के बाद उसके शरीर को इसी तरह से एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में विसर्जित किया जाए। थोंगछी अपने उपन्यास में एक प्रसंग में इस बात का उल्लेख करते हैं- "इसलिए मनपा जनजाति के लोगों को अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर मरने से काफी कठिनाई होती थी।...प्रत्येक मनपा व्यक्ति की कामना होती है कि मरने के बाद उसकी अन्त्येष्टि जमीन में दफनाकर या जलाकर न की जाए। उसकी लाश काटकर नदी में बहा दी जाए।"[20]

निष्कर्षत: हम देख सकते हैं कि मनपा समाज में मृत शरीर के शव-संस्कार का एक बिल्कुल ही अलहदा और अनोखा पारंपरिक नियम है, जिस पर मनपा समाज की गहरी निष्ठा है।

3.3 उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप

सामान्यत: आदिवासी समाज में स्त्री व पुरुष के बीच गैर बराबरी गैर आदिवासी समाजों की तुलना में कम है। इसलिए स्त्रियाँ भी अपेक्षाकृत स्वतंत्र जीवन यापन करती हैं। पारंपरिक जीवन में सामाजिक-आर्थिक सूत्रधार के रूप में इस समाज में औरत की बहुत ही अहम भूमिका होती है। मनपा स्त्रियाँ स्वालंबी होती हैं। वह खुद कमाकर अपने और पूरे परिवार का भरण-पोषण कर सकती हैं। वे पुरुष के साथ-साथ जंगल और खेत के कार्यों में अपनी भागीदारी निभाती हैं, और उसके साथ-साथ घर की भी पूई जिम्मेदारी उठी हैं। इस तरह स्त्रियों पर दोहरी ज़िम्मेवारी होती है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में दारगे नरबू की पत्नी गुईसेंगमू उससे कहती है- "तुम्हारे साथ शादी कर मेरा जीवन तकलीफदेह बन गया, हाँ, तकलीफदेह बन गया। मैं अकेली औरत और कितना काम करूँगी? घर देखूँगी या खेत देखूँगी या गूँगी की देखभाल करूँगी? तुम तो लाश काटने के अलावा कोई काम नहीं करते!... घर की क्या हालत हुई है, हम दो लोगों ने कुछ खाया है या नहीं, इसकी तरफ तुम्हारा बिल्कुल ध्यान नहीं है।...सिर्फ मैं ही तुम्हें बर्दाश्त कर रही हूँ। मेहनत करते हुए तुम्हें और तुम्हारी गूँगी बेटी को खिलाते हुए मेरी तबियत बिगड़ चुकी है। मेरे मरने पर तुम्हें और गूँगी को कौन खिलाएगा?"[21]

भारतीय स्त्री-पुरुष के जीवन में आपसे झगड़ों में भी कहीं-न-कहीं प्यार की पराकाष्ठा विद्यमान रहती है। हम उसी व्यक्ति से झगड़ते हैं, जिसे अधिक प्यार करते हैं या जिसे हम अपना मानते हैं। अपनों के प्रति हमेशा हमारा ध्यान बना रहता है। उसके गलत-सही काम के लिए सुझाव देना और उसे गलत रास्तों पर जाने से बार-बार रोकना और उसे आगाह करना भी उस व्यक्ति के प्रति प्यार को ही दर्शाता है। उपन्यास में दारगे नरबू की पत्नी गुईसेंगमू के झगड़े-उलाहने में भी दारगे के प्रति गहरा प्रेम छुपा हुआ है- "बड़बड़ाती

हुई हमेशा दारगे नरबू को फटकारती रहने के बावजूद उसकी पत्नी गुईसेंगमू उसे बहुत प्यार करती है।...आदतन दारगे फटकार सुनता रहता है और आदत के अनुसार ही बीच-बीच में हाँ-हूँ भी करता जाता है मानो वह बातें सुन रहा है, ध्यान दे रहा है, हृदयंगम कर रहा है और मानो उसे पत्नी की बातों पर यकीन हो रहा है।"[22]

मानव जीवन की आधारशिला प्रेम ही है। जहाँ अपनेपन की भावना है वहीं प्रेम का बीज अंकुरित होता है। तभी तो प्रेम केवल जोड़ने में विश्वास रखता है। प्रेम इंसान की आत्मा में पलनेवाला एक पवित्र भाव है। दिल में उठनेवाली कई अन्य भावनाओं को बखूबी व्यक्त किया जा सकता है, किन्तु यदि आपके हृदय में किसी के प्रति गहरा प्रेम है तो आप उसे अभिव्यक्त नहीं कर सकते। यह एक एहसास है और एहसास बेजुबान होता है। उसकी कोई भाषा नहीं होती।

सही मायने में सच्चा प्रेम वह होता है जो अपने प्रिय के हर दुःख-सुख, धूप-छांव और पीड़ा आदि में हर कदम साथ रहता है। वह चाहे माता-पिता, भाई- बहन, दोस्त या दाम्पत्य जीवन का प्रेम ही क्यों न हों। इसमें परिस्थितियाँ पहले से निर्धारित नहीं होतीं। प्रेम को देखने-परखने का नजरिया अलग हो सकता है। किन्तु प्रेम केवल प्रेम ही होता है, जिसे महसूस किया जा सकता है। इस उपन्यास में पिता एवं पुत्री के प्रेम के एहसास को दारगे नरबू और उसकी गूँगी बेटी के माध्यम से व्यक्त किया गया है। दारगे नरबू की बेटी गूँगी जरूर है लेकिन वह अपने पिता के दुःखों को एवं उनकी परिस्थितियों को भाप लेती है। दारगे नरबू भी यूँ तो अपनी बेटी से कटा-कटा रहता है, लेकिन उसके दिल में भी अपनी बेटी के लिए गहरा प्रेम है, जिसे वह सामान्यतः व्यक्त नहीं करता। उपन्यास के एक प्रसंग में पिता-पुत्री के इस परस्पर प्रेम को देखा जा सकता है- "पिता को आँखों से आँसू बहाते देख गूँगी लड़की ने काँपी उँगलियों से उसके आँसू को पोंछने की कोशिश की। लड़की की

उँगलियों के स्पर्श से पहले तो वह चौंक गया, फिर खुद ही अपने आँसू पोछकर उसने तटस्थ होने की कोशिश की। कभी भी किसी वजह से नहीं रोने वाला, शव काट-काटकर सख्त दिल का आदमी बनने वाला अपने आँसू निकलने की बात महसूस कर पत्नी और बेटी के सामने झिझक रहा था। अपने आँसू पोंछने की कोशिश करने वाली बेटी के प्रति कृतज्ञता के भाव से उसका मन अपने आप गदगद हो उठा। इतनी प्यारी बच्ची को इतने दिनों से उपेक्षा करते रहने, उसे पितृत्व के स्नेह से वंचित करते रहने की वजह से वह पछतावे की आग में झुलसने लगा।"[23]

हमारे समाज में सामाजिक संबंधों की चार दिवारी होती है, जिसमें नाना प्रकार के रिश्तों की एहमियत का पता तब चलता है जब इनमें से कोई हमारा साथ छोड़कर चला जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में किसी मृत युवती के शव को देखकर दारगे नरबू को लगता है कि यह रिजोम्बा का ही शव है और वह रिजोम्बा के गम में व्याकुल हो जाता है, क्योंकि वह उससे प्रेम करता था, वह उसकी प्रेमिका थी उसकी। प्रेमिका के बिछड़ने या खोने के कष्ट को दारगे के माध्यम से कुछ इस प्रकार व्यक्त किया गया है- "रिजोम्बा का टोदुंग हाथ में लेकर रोते हुए दारगे ने महसूस किया कि सिर्फ उसकी रुलाई की आवाज ही पहाड़ के सीने से प्रतिध्वनित हो रही है। एक और रुलाई की आवाज उसी तरह पहाड़ के सीने से टकराकर ध्वनित-प्रतिध्वनित हो रही है।...उसकी तरह ही एक युवक अपने पास पड़ी हुई एक युवती की लाश से लिपटकर रो रहा है। शायद मृत लड़की उसकी बहन थी, या शायद उसकी पत्नी है या प्रेमिका थी, प्रेमिका के मरने पर वह भी उसकी तरह कातर होनेवाला एक प्रेमी है।"[24] दारगे नरबू उस युवक को रोता देखकर उसके पास जाता है और मृत युवती के बारे में पूछता है और जब पता चलता है कि वह युवती इस युवक की प्रेमिका थी जिसके बिछड़ने पर वह व्याकुल है तो दारगे नरबू को उस युवक के प्रति सहानूभूति होती है। वह

युवक को समझाते हुए कहता है- "मत रोओ दोस्त, मत रोओ। तुम्हारी तरह इस युद्ध में मैंने भी सब कुछ खो दिया है। मेरे माता-पिता, मेरे भाई-बहन, मेरी रिजोम्बा, अपने जिगमे, गम्बू, नावांग सबको गँवा चुका हूँ। तुम्हारी तरह मेरा विवाह भी रिजोम्बा या जिगमे के साथ होने वाला था। नहीं हो सका।...देखो, यह देखो, यह मेरी रिजोम्बा का टोदुंग है, इस टोदुंग के सिवा मुझे उसकी लाश भी नहीं मिल पायी। कम से कम लाश मिल गयी होती तो मैं उसकी अन्त्येष्टि तो कर सकता था।"[25] दारगे नरबू का यह कहना कि मुझे तो 'रिजोम्बा की लाश भी नहीं मिली' प्रेमिका के प्रति उसके लगाव, आदर और सम्मान को व्यक्त करता है, जिसमें न कोई दिखावा है और न ही कोई बनावटीपन। इसमें सिर्फ और सिर्फ अपनी प्रेमिका के प्रति गहरे प्रेम की भावना है।

विवाह समाज और समाजीकरण की प्रक्रिया का आवश्यक अंग है। जनजातीय समाज में विवाह का उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति का साधन माना जाता है। भारतीय समाज में कहीं-कहीं आपसी रिश्तेदारी में भी विवाह होता है। मनपा समाज में भाई-बहन के बच्चों में एक दूसरे से शादी करने का प्रावधान है। रिजोम्बा दारगे नरबू की बुआ की बेटी थी और ये दोनों बचपन से एकसाथ पले बड़े थे। रिजोम्बा और दारगे नरबू के परिवार वालों का भी विचार था कि दोनों की शादी करवा दी जाए। लेकिन मनपा समाज में भी शादी से पहले लड़के और लड़की की कुंडली मिलाने की प्रथा विद्यमान है। कुंडली के अनुसार लड़के और लड़की का संबंध अनुमानत: सही-सही दिखाई देने पर ही शादी तय की जाती है। रिजोम्बा और दारगे नरबू की शादी इसलिए नहीं हो पाती क्योंकि दोनों की कुंडली में कुछ व्यवधान है- "...दारगे जवान हो चुका था। रिजोम्बा भी युवती बन चुकी थी। दारगे के माता-पिता ने दोनों के शादी करने का फैसला किया था।...इसीलिए लामा के पास जाकर शुभ मुहूर्त निकालने के लिए कहा गया। लामा ने बार-बार पासा की गोटी

फेंककर देखा, पुस्तक खोलकर पढ़ा, सिर हिला-हिलाकर फिर से गोटी फेंकने लगा, मानो कुछ समझ नहीं पा रहा था। कुछ देर बाद पासा और पुस्तक समेट कर बोला-" नहीं होगा। यह विवाह नहीं हो सकता। रिजोम्बा की किस्मत में विवाह नहीं लिखा हुआ है। विवाह होने पर उसकी मौत निश्चित है। और तो और, उसका सांसारिक जीवन भी समाप्त होने वाला है। बहुत जल्द उस पर बड़ी मुसीबत आयेगी।"[26]

बचपन से रिजोम्बा घरवालों से सुनती आ रही थी कि तुम्हारी शादी दारगे नरबू से होगी। तब उसे शादी का मतलब भी नहीं पता था। बड़ी होकर जब उसे शादी का मतलब समझ में आने लगा तब लामाओं द्वारा शादी न करने की बात कहने पर उसे बहुत ही पश्चाताप हुआ। रिजोम्बा दारगे नरबू से सब कुछ बता देना चाहती है और इसीलिए उसे अकेले में मिलती है। रोते हुए दोनों के बीच शादी न होने के पीछे के कारणों को बताती हुई दुःख व्यक्त करती है। प्रस्तुत उपन्यास में इसे कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है- "बचपन में बिना कुछ समझे वह कहती थी कि बड़ी होकर जांगसान दारगे के साथ शादी करेगी, मगर अब वह अपने वायदे को पूरा नहीं कर पायेगी। लामाओं ने कहा है कि अविवाहित अवस्था में ही उसकी मौत हो जायेगी। उसकी किस्मत में गृहस्थी का सुख लिखा ही नहीं हुआ है। अगर वह शादी करेगी या पुरुष के साथ सोयेगी तो सिर्फ उसका ही नहीं, घर का भी अहित होगा और उसका स्पर्श करने वाले पुरुष का भी अहित होगा।...वह दारगे से शादी नहीं कर सकती, लामाओं ने गणना करके यह भविष्यवाणी की है, यह सारी बातें खुलकर दारगे को बतानी पड़ेगी, उससे हमेशा के लिए बिछड़ने से पहले। कौन जानता है कि विछोह की घड़ी कब आ जाये। आजकल उसकी दायीं आँख हमेशा फड़कती रहती है। आने वाली मुसीबत का संकेत मिल रहा है।"[27]

कालचक्र पूजा से लौटकर वापस आने के बाद आउ थाम्पा (दारगे नरबू) के व्यवहार में कुछ-कुछ बदलाव दिखता है। इस बदलाव का कारण है आने सांगे नोरलजोम (रिजोम्बा) का मिलना। कालचक्र पूजा के दौरान आने सांगे नोरलजोम को देखने से आउ थाम्पा की हालत दुविधाजनक हो जाती है, क्योंकि उसके हिसाब से रिजोम्बा की मृत्यु हो चुकी होती है। लेकिन ठीक वैसी ही लड़की को आने सांगे के रूप में देखकर उसे आश्चर्य होता है। जब उसे यह अहसास हो जाता है कि रिजोम्बा ही आने सांगे नोरलजोम है, तब वह उससे मिलने या उसे अपने घर बुलाने के लिए एक नए घर का निर्माण करता है। घर निर्माण में उसके उत्साह एवं उमंग को देखकर गाँववाले भी चकित रह जाते हैं। गाँववाले भी घर निर्माण में उसकी मदद करते हैं। घर निर्माण के पीछे मुख्य उदेश्य आने सांगे नोरमजोम को बुलाना ही था। आउ थाम्पा और आने सांगे नोरलजोम बचपन से ही एक दूसरे को जानते थे। लेकिन कुण्डली न मिलने के कारण दोनों की शादी नहीं हो पाई। आउ थाम्पा अर्थात दारगे नरबू आज भी उसे उतना ही चाहता है और यही वजह है कि नये घर की पूजा के लिए लामा को न बुलाकर सन्यासिन आने सांगे को बुलाना चाहता है। आउ थाम्पा के मन की बात को चोरगेन के साथ उसके संवाद के माध्यम से समझा जा सकता है-

" "मैं आने सांगे नोरलजोम के द्वारा पूजा करवाने के बारे में सोच रहा हूँ।"

"क्या कहा?" आउ थांपा की बात सुनकर चोरगेन को अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ, इसीलिए पूछा।

"सोच रहा हूँ आने सांगे नोरलजोम को घर आने का निमंत्रण देकर पूजा सम्पन्न करवाने के लिए अनुरोध करूँगा।"

"इतनी बड़ी सन्यासिन लामा के द्वारा पूजा करवाओगे? कहीं फिर तुम्हारा दिमाग खराब तो नहीं हो गया?"

“नहीं! खराब नहीं हुआ है। आने सांगे को बुलाकर पूजा करवाने के लिए ही मैंने नये घर का निर्माण किया है, उसके लिए नये शौचालय का निर्माण करवाया है, नए बिस्तर का इंतजाम किया है, अब अगर वह नहीं आयेगी तो फिर मेरी सारी तैयारी किस काम की?” आउ थाम्पा अब अपने गुप्त उद्देश्य को व्यक्त किये बिना नहीं रह सका।”[28]

वस्त्राभूषणों की देन-लेन भी प्यार की एक निशानी होती है। दारगे नरबू रिजोम्बा से बहुत प्यार करता था। अपने वादे के अनुसार वह रिजोम्बा को टोरग्या उत्सव के मौके पर एक टोदुंग (शरीर के ऊपरी हिस्से में ब्लाउज की तरह पहने जाने वाला वस्त्र) तोहफे के रूप में देता है। यह टोदुंग प्रस्तुत उपन्यास में कई अवसरों पर काफी महत्वपूर्ण हो गया है। चीन युद्ध के दौरान मारे गये सैनिकों की लाशों, जिनके चेहरे बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गए थे, की पहचान दारगे नरबू और दूसरे लोगों ने उनके कपड़ों से की थी। उसी क्रम में दारगे नरबू को रिजोम्बा का खून में सना टोदुंग मिलता है और वह समझता है कि रिजोम्बा भी मारी गई। बाद में आने सांगे के रूप में जब रिजोम्बा से उसकी मुलाक़ात होती है तो वह यह बात स्पष्ट करता है- “लामाखीन ऐ, तुम जो जिंदा हो, यकीन नहीं हो रहा है। तुम लोगों को ढूँढते हुए मैं आ रहा था तब रास्ते में मुझे खून से भीगा हुआ तुम्हारा आस्तीन का पास फटा हुआ टोदुंग मिला था। कुछ देर बाद जमीन पर बिखरा हुआ तुम्हारा शोमबा नजर आया था।”[29]

उपन्यास के लगभग आखीर में आने सांगे नोरलजोम की मृत्यु के पश्चात जब उसकी लाश आउ थाम्पा के सामने आती है तो लाश के टुकड़े करते हुए उसे फिर वह टोदुंग दिखाई पड़ता है, जो उसने रिजोम्बा (आने सांगे) को भेंट किया था- “आउ थांपा ने एक-एक कर आने सांगे के शव से उसकी संन्यासिन वाली तीन गेरुवा पोशाकें खोल दी। बदन की गेरुवा पोशाक के भीतर बाहर से नजर नहीं आने वाली अपनी दी हुई टोदुंग पोशाक को देखकर

वह ठिठक गया। टोदुंग देखकर गरचूंग ने मुस्कराकर आउ थांपा की तरफ आँखें झपकाकर कुछ इशारा किया, मगर वह भावहीन बना रहा।"[30] यह टोदुंग दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम की निशानी बनकर इस उपन्यास में कई अवसरों पर प्रकट होता है!

निष्कर्षत: 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम के साथ-साथ दारगे नरबू और उसकी पत्नी गुइसेंगमू के गार्हस्थ्य प्रेम का और दारगे नरबू तथा उसकी गूंगी बेटी के बीच वात्सल्य प्रेम का सुंदर चित्रण उपन्यासकर ने किया गया है। लेकिन सबसे मार्मिक प्रसंग तो दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम का ही बन पड़ा है!

3.4 दलाई लामा का भारत आगमन

भारत में धार्मिक गतिविधियों को लेकर पूरी स्वतंत्रता है। तिब्बती स्वतन्त्रता आन्दोलन पर चीन के प्रहार के बाद दलाई लामा 1959 में भारत आ गये थे। तिब्बत हमेशा से ही आक्रांताओं का मारा रहा है। पहले मंचू, फिर मंगोल, गोरखा, चीनी। 17 मार्च, 1959 को जब दलाई लामा कुछ विश्वस्त सैनिकों के साथ भेस बदलकर भारत की शरण में आए, तब पूरी दुनिया चीन की निंदा कर रही थी। उस समय दलाई लामा चीनी सैनिकों से बचने के लिए दिन में तिब्बती गाँव में छुपकर रहते थे और रात में सफर करते थे। उनके भाग जाने के बाद दुनिया को यकीन हो गया था कि दलाई लामा लड़ाई में मारे गये। चीनी सैनिक और सरकार भी उनकी लाश की खोज में लग गई थी। यही उनकी गलतफहमी थी। दलाई लामा का भारत आगमन चीन को रास नहीं आया और भारत को भी इसका खामियाजा 1962 के भारत-चीन युद्ध में भुगतना पड़ा।

तिब्बत एशिया में तिब्बती पठार पर स्थित एक क्षेत्र है, जो 24 लाख वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यह चीन के क्षेत्रफल का लगभग एक चौथाई है। यहाँ पर तिब्बती लोगों के साथ-साथ कुछ अन्य समुदायों के लोग भी रहते हैं। तिब्बती शरणार्थियों के पुनर्वास में भारत की भूमिका को लेकर चीन का रवैया हमेशा से आलोचनात्मक रहा है। जब 1959 में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया और वहाँ का सारा प्रशासन अपने हाथ में ले लिया, तब इसका फायदा उठाते हुए वह तिब्बत के लोगों पर अत्याचार करने लगा। तब दलाई लामा ने बातचीत कर मध्यमार्ग निकालने के लिए चीन को वार्ता दल भेजा लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला। चीन सरकार द्वारा दलाई लामा को बंदी बनाने की कोशिश की जा रही थी, जिसकी वजह से उनके जीवन पर खतरा मंडराने लगा। आखिरकार उन्हें तिब्बत छोड़ना पड़ा। तिब्बत छोड़ने के बाद उन्होंने भारत में शरण लिया। रामचंद्र गुहा के अनुसार – "मार्च, 1959 के आखरी दिन दलाई लामा मैकमोहन

लाइन पार कर भारत आ गए। कई बरसों से तिब्बत का वह दैवीय शासक ल्हासा के पोटाला महल में बड़े असहज रूप से अपनी गद्दी पर बैठा रहा था, जबकि चीन उसके देश पर अपना शिकंजा कसता गया।...सन 1958 में पूर्वी तिब्बत के खाम्पाओं ने इन आक्रांताओं के खिलाफ सशत्र विद्रोह शुरू किया। शुरुआती कुछ सफलता के बाद चीनियों ने इस विद्रोह का दमन कर दिया। अब चीनियों के बदले की कारवाई से खुद दलाई लामा खतरे में पड़ गए। जब नई दिल्ली ने उन्हें राजनीतिक शरण देना मंजूर कर लिया तो वे एक रात अंधेरे का फायदा उठाकर वहाँ से अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ भारत पलायन कर गए। ...दलाई लामा ने भारत में अपनी पहली रात तवांग के बौद्ध मठ में बिताई। उसके बाद वे मैदान में बसे आसाम के शहर तेजपुर चले आए जहां भारतीय अधिकारियों ने उसका 'हालचाल' लिया।"[31]

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में मनपा समाज एवं संस्कृति के बहाने भारत-चीन युद्ध, तिब्बत एवं तवांग की स्थिति, दलाई लामा का भारत आगमन आदि स्थितियों का भी चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने मनपा समाज और संस्कृति के बहाने उनके संघर्ष एवं उनकी वेदना को भी स्पष्ट किया है। दलाई लामा के भारत आगमन के समय तिब्बत की स्थिति को व्यक्त करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं– "तिब्बत को चीन के कब्जे से आजाद करवाने के लिए आन्दोलन चल रहा था, जगह-जगह चीनी सैनिकों और तिब्बती लोगों के बीच संघर्ष हो रहा था और तिब्बत से शरणार्थी भारत आने लगे थे, इसका प्रभाव तवांग इलाके पर भी पड़ा था। काफी दिन पहले चोरगेन कारमा थिनले ने जो भविष्यवाणी की थी, वह काफी हद तक सही साबित हुई और घर-घर में शरणार्थी पहुँचने लगे थे।"[32] तिब्बत आन्दोलन का फायदा उठाकर ही चीनी सैनिकों ने उसपर कब्जा करने का मन बनाया था और धर्मगुरु दलाई लामा को बंदी बनाने की भूमिका रची थी। चीन की इस साजिश की जानकारी दलाई लामा को मिल गई थी। इसीलिए दलाई लामा ने वहाँ से निकलकर भारत में शरण लेने का विचार बनाया। उपन्यासकार के शब्दों में– "तिब्बत के

जन आन्दोलन का फायदा उठाते हुए चीन ने तिब्बत में तबाही का सिलसिला शुरू कर दिया था। ल्हासा में मौजूद चीन के सेनाध्यक्ष ने इस अवसर का फायदा उठाते हुए धर्मगुरु दलाई लामा को बंदी बनाने की साजिश रची। चीन की सेना से बचाने के लिए तिब्बती परिषद के सदस्यों ने दलाई लामा को ल्हासा से निकालने के लिए योजना तैयार की और एक दिन चुपचाप दलाई लामा अपने अनुयायियों के साथ भारत की तरफ रवाना हो गये।"[33] उपन्यासकार आगे बताता है–"निश्चित समय पर दलाई लामा ने भारत की भूमि पर पदार्पण किया और सुरवा सांबा में तवांग के एसिस्टेंट पोलिटिकल ऑफिसर मि. टी. के. मूर्ति ने भारत सरकार की तरफ से उनका स्वागत किया।"[34]

दलाई लामा का भारत आगमन मनपा समाज के लिए कोई आश्चर्य का विषय नहीं था। जनश्रुतियों के अनुसार दलाई लामा का जन्म लिथांग में हुआ था। मनपा लोगों का मानना था कि दलाई लामा एक-न-एक दिन तवांग जरूर आएँगे। यह जनश्रुति दलाई लामा के प्रति मनपा लोगों का भक्तिभाव ही था। जब दलाई लामा के भारत आगमन की खबर मनपा लोगों की बीच पहुँची तो यह जनश्रुति सही साबित हो गई! दलाई लामा के प्रति मनपा लोगों की भक्ति भावना को उपन्यासकार ने कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है- "धर्मगुरु, भगवान दलाई लामा का प्रदर्शन प्राप्त कर भक्तगण अपने आप को धन्य समझ रहे थे, कोई जज्बाती होकर रो रहा था, कोई जमीन पर लोटकर छाकछोवा प्रणाम कर रहा था। कोई दलाई लामा के चरणों की धूल माथे पर लगा रहा था। भगवान दलाई लामा को करीब आते देखकर दारगे, गम्बू, जिगमे और रिजोम्बा ने सिर झुकाकर प्रणाम किया। अब तक किसी भी भक्त के सामने रुके बगैर हाथ जोड़कर धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे दलाई लामा अचानक चौंकते हुए ठिठक गये। इसके बाद वे कुछ देर तक सिर झुकाकर खड़ी रिजोम्बा की तरफ एकटक देखते रह गये। दलाई लामा को अपने करीब न आते देखकर काफी देर से सिर झुकाकर खड़ी रिजोम्बा ने सिर उठाकर उनकी तरफ देखा। ...उन्होंने उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। अपने सिर पर दलाई लामा के हाथ का स्पर्श पाकर रिजोम्बा ने सुकून महसूस किया। इस बार तिब्बती भाषा में दलाई लामा ने उससे कुछ पूछा। दलाई

लामा के पीछे-पीछे आये दुभाषिए ने इस बार उससे मनपा भाषा में पूछा, "जोम (लड़की), भगवान तुम्हारा नाम जानना चाहते हैं। अपना नाम बताओ?"[35]

तिब्बत विद्रोह के बाद दलाई लामा के भारत आगमन की मंशा को व्यक्त करते हुए रामचन्द्र गुहा लिखते हैं कि– "पूरे तिब्बत में कम्युनिस्टों के धर्म-विरोधी दुष्प्रचार के प्रति काफी नाराजगी थी। जब चीनियों ने दलाई लामा को एक 'सांस्कृतिक समारोह' में भाग लेने के लिए पीकींग आमंत्रित किया तो उनके सलाहकारों ने उन्हें सतर्क किया कि यह उन्हें गिरफ्तार करने की एक साजिश है। जब उन्होंने वहाँ जाने से इनकार कर दिया तो चीनियों ने धमकी देनी शुरू कर दी। इसलिए उन्होंने भारत रवाना होने का फैसला कर लिया। दलाई लामा ने नेहरू से कहा कि तिब्बत में कोई भी सुधार तिब्बत के धर्म और उसकी परंपराओं को देखते हुए तिब्बतियों के द्वारा ही किया जा सकता है। चीन के सुधार का तरीका उन्हें 'आत्मा विहीन मनुष्य' बना देगा। अब उनकी अपनी उम्मीद भारतीय सहायता से तिब्बत की आजादी को हासिल करना था।"[36]

दलाई लामा का स्वागत करने के लिए और उनके दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मनपा लोगों ने पहले से ही तैयारियाँ कर रखी थीं। पांगछेन में एक बौद्ध स्थान था जहाँ पर दलाई लामा को ठहराने का इंतजाम किया गया था। पांगछेन, दाकपानांग और भूटान के इलाकों से काफी संख्या में लोग इकट्ठे हो गये थे। दलाई लामा का आगमन मनपा समाज में एक त्योहार की तरह मनाया गया था। उपन्यासकार ने इस स्थिति को कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है– "छोरतेन के सामने प्रार्थना सभा के लिए मंडप बनाकर दलाई लामा के लिए विशेष नक्काशी वाला ऊँचा आसन तैयार किया गया था। लामाओं के बैठने के लिए अलग इन्तजाम किया गया था, बड़े साहबों के बैठने के लिए अलग इंतजाम किया गया था। भक्तों के बैठने के लिए कोई निश्चित जगह नहीं बनायी गयी थी, खुले जगह में जिसे जहाँ जगह मिल गयी थी, वहीं बैठ गया था या खड़ा था।...उनके (दलाई लामा के) भाषण का सार यह था कि चीन ने तिब्बत पर हमला कर तिब्बत की सम्प्रभुता पर चोट पहुँचाई है

और तिब्बत के हजारों निर्दोष लोगों की जान ली है, गोम्पाओं को नष्ट किया है और लामाओं को यातनाएँ दी हैं, तिब्बत की जमीन से तिब्बती संस्कृति और बौद्ध धर्म को नष्ट करने तथा कम्युनिस्ट आदर्श को स्थापित करने की साजिश रची है। अपनी मर्मस्पर्शी भाषा में उन्होने तिब्बत का एक भयावह चित्र प्रस्तुत किया था। दारगे और रिजोम्बा के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी।...जब दलाई लामा ने शोक में डूबी हुई आवाज के साथ पूरी कहानी सुनाई तो रिजोम्बा और उसके साथियों के अलावा भी वहाँ मौजूद सारे भक्त रोने लगे। मगर भक्तों को अधिक समय तक शोक में न डूबने के लिए कहते हुए दलाई लामा ने कहा कि एक अशुभ शक्ति कि छाया तिब्बत पर पड़ी है, इसीलिए उस देश और बौद्ध धर्म की वैसी दशा हुई है। मगर वह दशा क्षण अस्थाई ही है, संकट के बादल जल्द ही तिब्बत और बौद्ध धर्म के ऊपर से छँटने वाले हैं। उस संकट से तिब्बत और उसकी जनता तथा बौद्ध धर्म को बचाने के लिए उपाय की तलाश में वे बुद्ध की धरती भारत वर्ष पहुँच गये हैं।"[37] इसी क्रम में उपन्यासकार बताते हैं- "दलाई लामा का स्वागत करने के लिए पांगछेन से लेकर तवांग तक उनके अनगिनत भक्तों ने सड़कों पर तोरण बनाकर, घर-द्वार, गाँव की सड़कें आदि साफ कर प्रत्येक घर के सामने नये सिरे से सांगबुम सजाकर अगरबत्ती और धूना जलाये थे, सड़कों और पहाड़ की चोटियों पर नये मने फान अथवा धर्म ध्वजा लहराए थे, दलाई लामा के बैठने के लिए खासतौर पर ऊँचे नक्काशी वाले आसन बनाये गये थे, दलाई लामा का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए लोगों के बीच होड़ मच जाती थी।"[38] उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि मनपा समाज दलाई लामा को ईश्वर तुल्य मानता रहा है। भारत में उनका आगमन निश्चित रूप से इस समाज के लिए सौभाग्यशाली साबित हुआ।

दो-तीन दिनों तक तवांग में ठहरने के बाद दलाई लामा ने अपना रुख तेजपुर की तरफ कर दिया। इन दो-तीन दिनों में दलाई लामा का प्रभाव मनपा समाज पर बहुत ही ज्यादा पड़ा था। उनके जाने के बाद लोगों ने अपना स्वाभाविक जीवन शुरू तो कर दिया

था, लेकिन उनके हाव-भाव एवं जीवन के प्रति उनका नजरिया भी बदल गया था। दलाई लामा के प्रभाव ने उनके आचरण एवं चरित्र में काफी बदलाव लाया था, खासकर धर्म, मानवता, भाईचारा एवं आपसी रिश्तों के प्रति। इस सबका प्रभाव सबसे ज्यादा रिजोम्बा पर पड़ा। दलाई लामा का सबसे करीबी सानिध्य प्राप्त करने के कारण रिजोम्बा पूरी तरह से बदल गयी थी। उपन्यासकार के शब्दों में- "दलाई लामा के चले जाने के बाद, उन लोगों का स्वाभाविक जीवन शुरू हो गया था। मगर इस स्वाभाविक जीवन के बीच भी कई तरह के बदलाव आ गये थे, जीवन के प्रति उनका नजरिया बदल गया था, उनके रिश्ते, उनका स्वभाव चरित्र, आचरण और बातचीत में भी बदलाव आ गया था। दलाई लामा के दो दिनों के व्यवहार ने रिजोम्बा को अत्यंत प्रभावित किया, धर्म के प्रति उसका लगाव बढ़ गया, वह घर में छों-साम का अधिक खयाल रखने लगी, कहीं से दलाई लामा की एक तस्वीर लाकर उसने छों-साम में रख दी। सुबह जागते ही छों-साम में पानी चढ़ाकर, घी का दीपक जलाकर और बाहर के सांगबुम पर अगरबत्ती जलाकर ही वह कोई काम शुरू करती थी। दारगे के प्रति उसका प्यार भले ही कम नहीं हुआ था मगर वह उससे दूर रहने की कोशिश करने लगी, पहले की तरह हँसी-मजाक करना बंद कर दिया। रिजोम्बा गम्भीर, अत्यन्त दायित्वशील और धर्म-परायण हो गयी।"[39]

एक तरफ दलाई लामा का तिब्बत से तवांग आना मनपा समाज के लिए अत्यन्त हर्ष की बात थी तो वहीं दूसरी तरफ युद्ध का आभास लोगों के दिल को झकझोर रहा था। आज भी उस युद्ध की कहानियाँ सुनकर लोगों के मन में कुछ अजीब-से आतंकित करनेवाले विचार उमड़ने लगते हैं। उपन्यासकार ने इस स्थिति को दारगे नरबू के माध्यम से कुछ इस प्रकार व्यक्त किया है– "दलाई लामा का तिब्बत से आने के बाद के साल किस कदर भयावह थे। तिब्बत से भारी तादाद में शरणार्थी आ रहे थे और तिब्बत में चीनी सैनिकों के

हिंसक कार्यकलापों के किस्से लोगों को आतंकित कर रहे थे, इसके साथ ही समूचे अंचल पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे। मैदानी इलाके से आये भारतीय सैनिक समूचे जिले में फैल गये थे।...तिब्बत की सीमा पर स्थित तवांग अंचल के हरेक कोने में सैनिकों के फैल जाने के कारण उन लोगों के सामान उठाने के लिए विभिन्न गाँवों से लोगों को पोर्टर के रूप में काम करने के लिए समूह बनाकर जाना पड़ रहा था। अक्सर आसमान में हवाई जहाज नजर आते थे और वे जहाँ-तहाँ सैनिकों के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री फेंक कर चले जाते थे।"[40]

तवांग और उसके आस पास के क्षेत्रों में रहनेवाले बौद्धधर्मी दलाई लामा के आने के चलते धर्म के प्रति ज्यादा आकर्षित थे। दलाई लामा का आशीर्वाद प्राप्त करना इनके लिए बहुत बड़ी बात थी। बौद्ध धर्म में 'कालचक्र पूजा' का बहुत ही महत्व रहा है। मान्यता यह है कि जो व्यक्ति इस पूजा में तीन बार लगातार शामिल होकर कथा सुनता है, उसे पुण्य की प्राप्ति होती है। दलाई लामा जब दिरांग पहुँचते हैं तो वहाँ पर कालचक्र पूजा की तैयारी की जाती है। इस पूजा में तवांग के आसपास के क्षेत्रों से बहुत सारे बौद्ध लामा एवं आम लोग भाग लेने पहुँचते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में उपन्यासकार ने कालचक्र पूजा की विशेषता और महत्व को प्रस्तुत किया है- "दलाई लामा के दिरांग में पदार्पण के साथ ही कालचक्र महोत्सव शुरू हो गया। कालचक्र पूजा में भाग लेकर कई जन्मों के पापों को धोकर पुण्य अर्जित करने के लिए और दलाई लामा का दर्शन करने के लिए देश-विदेश से हजारों बौद्ध धर्मावलम्बी भक्तों का आगमन हुआ था। महायान बौद्धों की श्रेष्ठ तांत्रिक पूजा ही कालचक्र पूजा है। सिर्फ दलाई लामा ही पूजा कर सकते हैं। ऐसी मान्यता है कि जो आदमी जीवन में तीन बार इस पूजा में शामिल होकर मंत्रोच्चारण सुन सकता है, इस अवसर पर दलाई लामा के दिये हुए धर्म उपदेश को सुन सकता है और वांग अर्थात आशीर्वाद ले सकता सकता है, उसे परम पुण्य प्राप्त होता है और मरने के बाद उसकी आत्मा कईपेमे यानि स्वर्ग पहुँच जाती है...।"[41]

उपर्युक्त वाक्य से यह स्पष्ट है कि तवांग और उसके आस पास के क्षेत्र में दलाई लामा के प्रति बहुत सम्मान रहा है। मनपा लोग तो उन्हें ईश्वर का रूप मानते हैं और इसीलिए भारत आगमन पर लोगों ने उनका स्वागत बड़ी धूम-धाम से किया।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि दलाई लामा का भारत आगमन एक तरफ एक राजनीतिक चुनौती थी तो दूसरी तरफ इससे मनपा समाज की बौद्ध धर्म से नजदीकीयाँ बढ़ीं। भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तवांग और उसके आस पास के क्षेत्रों में तेजी से बढ़ा। जगह-जगह त्योहार के रूप में उनका स्वागत किया गया। भारतीय राजनीतिज्ञों ने उनकी हर तरह से मदद भी की। इस उपन्यास में मनपा समाज और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में इस ऐतिहासिक मुद्दे को भी बहुत ही बारीकी से उभारा गया है। उपन्यासकार उस पृष्ठभूमि को चित्रित करता है जिसे 1959 में मनपा समाज और उसके आस पास के लोगों ने जीया था। दलाई लामा का भारत आगमन, उसके पीछे की राजनीतिक परिस्थितियों तथा दलाई लामा के प्रति भारतीयों के स्नेह आदि को उपन्यासकार ने इस उपन्यास की मूल कथा के साथ बड़ी खूबसूरती से पिरोया है।

मनपा समाज में दलाई लामा को लेकर जो सम्मान का भाव रहा है या जो समर्पण रहा है, उसे देखकर यह लगता है कि दलाई लामा के लिए इस समाज ने युद्ध की विभीषिका को बहुत ही आसानी से झेल लिया। इसमें पुरुष के साथ-साथ महिलाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

3.5 भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज

भारत-चीन युद्ध जो भारत-चीन सीमा विवाद के रूप में भी जाना जाता है, 1962 में हुआ था। यह युद्ध भारत और चीन के बीच सीमा विवाद को लेकर लड़ा गया। रामचंद्र गुहा के अनुसार "जुलाई 1962 के तीसरे सप्ताह में लद्दाख के गलवान घाटी में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच झड़पें हुई। उसके बाद सितम्बर की शुरुआत में तवांग से 60 मील पश्चिम धोला/थाग ला पहाड़ियों के ऊपर नामका छू नदी घाटी से भी संघर्ष की खबरें आई। यह वो इलाका था जहाँ भारत, तिब्बत और भूटान की सीमा मिलती थी। यहाँ मैकमोहन रेखा की सही स्थिति विवादित थी। भारतीयों ने दावा किया कि पहाड़ी उस रेखा से दक्षिण में स्थित है जबकि चीनियों का कहना था कि यह उनके इलाके में है।"[42] उपन्यासकार ने इस विवाद का जिक्र अपने उपन्यास में किया है–"इसी नामखाछु नदी की तंग घाटी पर स्वामित्व को लेकर भारत और चीन सरकार के बीच शत्रुता पैदा हो गयी थी। यहीं पर आपरेशन ओंकार के जरिये धोला पोस्ट बनाने के बाद चीन और भारत के बीच युद्ध की नौबत आ गयी थी।"[43]

विवादित हिमालय सीमा युद्ध के लिए एक बहाना था लेकिन अन्य मुद्दों ने भी भूमिका निभाई। चीन में 1959 के तिब्बती विद्रोह के बाद जब भारत ने दलाई लामा को शरण दी तो भारत-चीन सीमा पर हिंसक घटनाओं की एक शृंखला शुरू हो गई। भारत ने फारवर्ड नीति के तहत मैकमोहन रेखा से लगी सीमा पर अपने सैनिक लगा रखे थे जो 1959 में चीनी प्रीमियर चाउ एन लाई के द्वारा घोषित वास्तविक नियंत्रण रेखा के पूर्वी भाग के उत्तर में थी। चीनी सेना ने 20 अक्टूबर 1962 को लद्दाख में और मैकमोहन रेखा के पार एक साथ घुसना शुरू किया। चीनी सेना दोनों मोर्चों पर भारतीय सेना पर भारी साबित हुई और उसने पश्चिमी क्षेत्र में चुशूल में रेजांग-ला एवं पूर्व में तवांग पर अवैध कब्जा कर लिया।

चीन और भारत के बीच एक लंबी सीमा है जो नेपाल और भूटान के द्वारा तीन अनुभागों में बंटी हुई है। यह सीमा हिमालय पर्वत-श्रेणियों से लगी हुई है, जो म्यांमार एवं

तत्कालीन पश्चिमी पाकिस्तान (वर्तमान बांग्लादेश) तक फैली हुई है। इस सीमा पर कई विवादित क्षेत्र अवस्थित हैं। पश्चिमी छोर पर अक्साई चीन है। यह क्षेत्र चीनी स्वायत्त क्षेत्र झिंजियांग और तिब्बत (जिसे चीन में 1965 में एक स्वायत्त क्षेत्र घोषित किया) के बीच स्थित है। पूर्वी सीमा पर म्यांमार और भूटान के बीच वर्तमान भारतीय राज्य अरुणाचल प्रदेश (पुराना नाम- नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) स्थित है।

भारत-चीन सीमा विवाद का दायरा लद्दाख, डोकलाम, नाथुला से होते हुए अरुणाचल प्रदेश की तवांग घाटी तक जाता है। अरुणाचल प्रदेश के तवांग इलाके पर चीन की निगाहें हमेशा से रही हैं। वह तवांग को तिब्बत का ही हिस्सा मानता है। तिब्बत को चीन ने 1951 में अपने नियंत्रण में ले लिया था। लेकिन 1959 में चीन के खिलाफ हुए एक विद्रोह के बाद 14वें दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत में शरण लेनी पड़ी। दलाई लामा के साथ भारी संख्या में तिब्बती भी भारत आए थे। चीन को भारत में दलाई लामा को शरण मिलना अच्छा नहीं लगा। उपन्यासकार येशे दोरजी थोंगछी अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में इस युद्ध की विभीषिका का चित्रण एवं मनपा समाज की स्थिति को बहुत ही सटीक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उपन्यासकार मनपा समाज की स्थिति को व्यक्त करते हुए यह बताना चाहता है कि तवांग जब तिब्बत सरकार के हाथों में था, तब उसकी स्थिति कैसी थी और 1952 में जब भारत सरकार के हाथों में हस्तांतरित हुआ तब उसकी स्थिति कैसी थी। दोनों शासनकाल में तवांग क्षेत्र और मनपा समाज की स्थिति को व्यक्त करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं कि "भूकंप के एक-दो साल बाद मनपा इलाके का प्रशासन तिब्बती सरकार से भारत सरकार के हाथ में हस्तांतरित हो गया था...पांगछेन से लेकर मागो तक रहने वाले मनपा लोगों को तिब्बती सरकार को कर देते रहने से छुटकारा मिल गया था, इसके अलावा तिब्बत सरकार को दिये जाने वाले लगान को पीठ पर लाद कर तिब्बत ले जाने की बेगारी से भी छुटकारा मिल गया था। तिब्बती अधिकारियों से मार खाने और उनके विभिन्न अत्याचारों से भी छुटकारा मिल गया था।"[44]

दो देशों के बीच होनेवाले युद्ध का परिणाम उन देशों या उनके सीमावर्ती देशों की आम जनता को भुगतना पड़ता है। तमाम तरह की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। तिब्बत को चीन से आजाद कराने के लिए खम्पा लोगों ने विद्रोह छेड़ दिया था। उस दौरान बहुत सारे तिब्बती अपनी जान बचाने के लिए भारत आने लगे। मनपा समाज की आर्थिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी कि वह शरणार्थियों की मदद कर सके। इस स्थिति को उपन्यासकार ने कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है– "तिब्बत को चीन के कब्जे से आजाद करवाने के लिए आंदोलन चल रहा था, जगह-जगह चीनी सैनिकों और तिब्बती लोगों के बीच संघर्ष हो रहा था और तिब्बत से शरणार्थी भारत आने लगे थे, इसका प्रभाव तवांग इलाके पर भी पड़ा था...तवांग के मनपा लोगों को तिब्बत सरकार, भूटान के राजा आदि को लगान देने से छुटकारा मिल गया था, मगर तिब्बती शरणार्थियों को भीख देते-देते अब उनका भंडार खाली होने लगा था। पहले की तरह तिब्बत के बड़े अधिकारियों के बोझ, मनपा लोगों से बटोरा गया अनाज का बोझ उन्हें उठाना नहीं पड़ रहा था मगर भारतीय अधिकारियों तथा सैनिकों का बोझ ढोते-ढोते मनपा लोगों की पीठ टूटने लगी थी।"[45]

तिब्बत आन्दोलन के दौरान भारत-तिब्बत सीमा से जब दलाई लामा का आगमन तवांग की तरफ होता है तो यहाँ का माहौल किसी त्यौहार से कम नहीं लगता। दलाई लामा के आगमन के उत्साह और युद्ध की विभीषिका के बीच मनपा लोगों की मन:स्थिति द्वंद्वात्मक बनी रहती है। चीन हमेशा से तिब्बत पर अत्याचार एवं अनाचार करता आया है। गोम्पाओं को नष्ट करना और लामाओं पर अत्याचार करना आम बात है। दारगे और रिजोम्बा इस युद्ध की स्थितियों को बचपन से ही चोरगेन के मुँह से सुनते आ रहे हैं। पांगछेन में जब दलाई लामा का आगमन होता है और वे अपने भाषण में तिब्बत पर हुए हमले का ज़िक्र करते हैं तो उस भाषण को सुनकर दारगे बहुत ज्यादा प्रभावित होता है। उपन्यासकार के शब्दों में– "उनके भाषण का सार यह था कि चीन ने तिब्बत पर हमला कर तिब्बत की सम्प्रभुता पर चोट पहुँचाई है और तिब्बत के हजारों निर्दोष लोगों की जान

ली है, गोम्पाओं को नष्ट किया है और लामाओं को यातनाएँ दी हैं, तिब्बत की जमीन से तिब्बती संस्कृति और बौद्ध धर्म को नष्ट करने तथा कम्युनिस्ट आदर्श को स्थापित करने की साजिश रची है। अपनी मर्मस्पर्शी भाषा में उन्होनें तिब्बत का एक भयावह चित्र प्रस्तुत किया था। दारगे और रिजोम्बा के लिए यह कोई नयी बात नहीं थी।...मगर आज जब दलाई लामा ने शोक में डूबी हुई आवाज के साथ पूरी कहानी सुनाई तो रिजोम्बा और उसके साथियों के अलावा भी वहाँ मौजूद सारे भक्त रोने लगे। मगर भक्तों को अधिक समय तक शोक में न डूबने के लिए कहते हुए दलाई लामा ने कहा कि एक अशुभ शक्ति की छाया तिब्बत पर पड़ी है...मगर वह दशा क्षण अस्थाई ही है, संकट के बादल जल्द ही तिब्बत और बौद्ध धर्म के ऊपर से छँटने वाले हैं। उस संकट से तिब्बत और उसकी जनता तथा बौद्ध धर्म को बचाने के लिए उपाय की तलाश में वे बुद्ध की धरती भारत वर्ष पहुँच गये हैं।"[46]

सीमा को लेकर चल रहे लंबे विवाद के बाद भारत और चीन के बीच युद्ध की शुरुआत 1962 में हुई। भारत-चीन युद्ध के चलते तवांग क्षेत्र के निवासियों को बहुत ही कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा। उनकी स्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने उसमें सुधार लाने का हर संभव प्रयास किया। चिकित्सा, शिक्षा, कृषि और कुटीर उद्योग आदि विभागों ने तवांग में कार्य करना शुरू कर दिया। चीन के आक्रमण से तबाह हुए तवांग की स्थिति को प्रस्तुत करते हुए एल.एन.चक्रवर्ती कहते हैं कि– "चीन के आक्रमण से, तवांग के विकास कार्यों में बहुत बड़ी बाधा पहुँची थी। वहाँ के निवासियों को इस आक्रमण से बहुत बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा था। कुछ ने तो अपना घर छोड़कर, भागकर असम में शरण ली थी। सड़कें, मकान और पुल नष्ट हो गए थे। चिकित्सालय और विद्यालय बंद कर दिए गए थे। वहाँ चल रहे राष्ट्र निर्माण के कार्यालय अचानक ठप पड़ गए थे। चीनी सैनिकों के वापस जाने के बाद घर छोड़कर भागे हुए लोगों को वापस उनके गाँवों और घरों में भेजा गया तथा एक बार पुन: विकास कार्यों में गति लाने का प्रयास किया गया।"[47]

दलाई लामा के तिब्बत से तवांग आने के बाद की स्थिति बहुत ही भयानक हो गई थी। दलाई लामा के आने से चीन बौखला गया था। चीन की सेना ने जब तिब्बत पर कब्जा किया तब बौद्ध धर्म के लोगों पर उन्होंने बहुत अत्याचार किए और बहुत-से लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी। चीन उस समय दलाई लामा की भी हत्या कराना चाहता था और इसी वजह से वर्ष 1959 में दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत आना पड़ा। भारत-चीन सीमा विवाद के चलते जब दलाई लामा भारत आए तब भारत ने उनका स्वागत किया। भारत-चीन विवाद के साथ-साथ दलाई लामा का भारत में आना भी भारत-चीन युद्ध का एक कारण है। रामचंद्र गुहा लिखते हैं कि "इससे पहले की चाउ एन लाई नेहरू के पत्र का जवाब देते, दलाई लामा भारत पलायन कर गए। इससे यह मुद्दा और भी जटिल हो गया क्योंकि चीनी सरकार भारतीय जनता के एक बड़े वर्ग द्वारा दलाई लामा के भारी स्वागत से काफी नाराज हुई। इसके लिए उन्होंने नई दिल्ली को जिम्मेदार ठहराया।"[48]

भारत-चीन दोनों देशों ने युद्ध की तैयारी शुरू कर दी थी। युद्ध की तैयारियाँ और चारों तरफ सैनिकों की चहल-पहल देख कर मनपा लोग भयभीत हो गए थे। इनके लिए युद्ध विनाश का कारण भी था। युद्ध में सैनिकों की मदद के लिए मनपा युवकों को भी लगाया गया। ये लोग सामान आदि पहुँचाने का कार्य करते थे। युद्ध के प्रति मनपा समाज के उदासीन भाव को स्पष्ट करते हुए थोंगछी लिखते हैं– "युद्ध की तैयारी देखकर सहज-सरल मनपा लोग दंग हो उठे हैं। इतने सारे सैनिकों को देखकर, सभी सैनिकों के हाथों में बंदूक, शरीर पर गोली की गठरी, एक-दूसरे को पहचानने लायक एक ही रंग की वर्दी, जूते, दूर की खबर लेने के लिए तरह-तरह के यंत्र, राशन, कपड़े आदि की आपूर्ति करने वाले हवाईजहाज, बड़े-बड़े अधिकारियों को लेकर घूमते हुए जहाँ-तहाँ उतरने वाले हेलिकाप्टर, क्या नहीं है भारतीय सेना के पास।...इतने ताकतवर भारतीय सैनिकों को देखकर सरल मनपा लोगों को विश्वास हो गया है कि भारत के सैनिकों के साथ, रोएंदार

भालू की दाढ़ी वाले सैनिकों के साथ चीनी सैनिक युद्ध जीत नहीं पाएंगे। भारत चीन से ज्यादा पराक्रमी है,...मगर निरीह मनपा लोगों की उम्मीद टूटने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। युद्ध की तैयारी तब चरमोत्कर्ष पर थी, किसी भी समय चीन भारत पर हमला कर सकता था, उसी समय दारगे और उसके साथियों को तवांग से सिग्नल रेजिमेंट के भारी-भारी उपकरण लाद कर पांगछेन अंचल के लुमपो नामक स्थान के लिए रवाना होना पड़ा।...दारगे के गाँव में सरकारी बाबू ने आकर आदेश दिया कि गाँव के युवक-युवतियों के पाँच-छह सदस्यीय दल को सिग्नल रेजिमेंट का उपकरण लाद कर लुमपो जाना होगा। सरकारी बाबू ने एक सूची दी जिसमें जाने वालों के नाम लिखे हुए थे। उनमें दारगे, गम्बू, नावांग, जिगमे और पेमा के नाम शामिल थे।"[49]

युद्ध के दौरान मनपा समाज में हमेशा भय की स्थिति बनी रहती थी। अपने धन-जन की रक्षा के प्रति परिवार वालों को हमेशा सचेत रहना पड़ता था। खास तौर पर सेना के जवानों से उन्हें हमेशा डर बना रहता था। मनपा समाज की महिलाओं के प्रति यह डर कुछ ज्यादा ही था। उपन्यास में इसे कुछ इस तरह प्रस्तुत किया गया है- "कभी मरियल नजर आने वाली जिगमे अब खूबसूरत युवती बन चुकी थी, गाँव में वह सबसे सुंदर थी, सबकी नजर उसके ऊपर रहती थी। जब वह बोझ उठाने के लिए जाती थी तब बूढ़े बाबू से लेकर सैनिक अधिकारी, जवान और दूसरे गाँव के नौजवान उसे घूरते रहते थे। यही वजह थी कि दारगे, गम्बू आदि को हमेशा उसका ध्यान रखना पड़ता है। खासतौर पर सेना के जवानों से उसकी हिफाजत करना उनके लिए कठिन काम था। युद्ध करने के लिए आने वाले ये जवान मानो इंसान नहीं थे बल्कि हिंसक शिकारी ही थे। उनकी आँखों में क्रोध, बेचैनी और लालसा के भाव साफ तौर पर नजर आती थी।...छूरवी गाँव के लोगों को दूसरे गाँव के लोगों की तरह बोझ उठाने के लिए तवांग जाना पड़ता था, तवांग से उन्हें कभी

लूम्पो, कभी धोला, कभी बूमला भेज दिया जाता था। इस तरह बोझ उठाकर जाते समय पुरुषगण का महिलाओं की हिफाजत करना जरूरी समझा जाता था।"[50]

भारत–चीन युद्ध के चलते तिब्बत और तवांग क्षेत्रों ने एवं भारत ने अपना बहुत कुछ खोया होगा इसमें कोई शक नहीं। इस युद्ध में मनपा समाज के लोगों ने अपना बहुत-कुछ खोया है। युद्ध की विभीषिका में धन-जन, घर, संपत्ति और अपने रिश्तेदारों तक को खोने की अकथ पीड़ा को उपन्यासकार दारगे नरबू के माध्यम से कुछ इस प्रकार व्यक्त करते हैं- "मत रोओ दोस्त, मत रोओ। तुम्हारी तरह इस युद्ध में मैंने भी सब कुछ खो दिया है। मेरे माता-पिता, मेरे भाई-बहन, मेरी रिजोम्बा, अपने जिगमे, गम्बू, नावांग सबको गँवा चुका हूँ। तुम्हारी तरह मेरा विवाह भी रिजोम्बा या जिगमे के साथ होने वाला था। युद्ध ने उन लोगों को मुझसे छीन लिया। देखो, यह देखो, यह मेरी रिजोम्बा का टोदुंग है, इस टोदुंग के सिवा मुझे उसकी लाश भी नहीं मिल पायी। कम से कम लाश मिल गयी होती तो मैं उसकी अन्त्येष्टि तो कर सकता था।"[51]

1962 के युद्ध का घाव इतना गहरा था कि तवांग शहर में रहनेवालों की जिंदगी किसी आम भारतीय शहर की जिंदगी से बिल्कुल अलग हो गई थी। दो देशों के बीच के युद्ध की विभीषिका सीमावर्ती लोगों को ज्यादा झेलनी पड़ती है। उनको अपने धन-जन की हानि के साथ-साथ घर-परिवार को छोड़कर जगह-जगह की ठोकरें खानी पड़ती हैं। युद्ध के समय सीमावर्ती क्षेत्रों के गाँव के लोगों को उस क्षेत्र से पलायन करना पड़ता है, क्योंकि पूरा सीमावर्ती क्षेत्र युद्ध का मैदान बन जाता है। 1962 के युद्ध में तवांग की हालात भी कुछ ऐसी ही थी, जिसे थोंगछी अपने उपन्यास में दारगे नरबू के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं- "मैंने देखा कि मेरे सिवा घर के लोग, गाँव के लोग भाग चुके थे। उन्हें ढूँढते हुए यहाँ पहुँच कर देखा सिर्फ लाशें ही लाशें, लाशें ही लाशें, यह राह मनुष्यों के कटे हुए अंगों से भरी हुई है। शायद मेरी रिजोम्बा भी आज नहीं बची है।... दारगे ने याद करने की कोशिश की कि

वह कहाँ बैठा है, धीरे-धीरे उसे याद आया तवांग-सेला मार्ग पर वह अपनी प्यारी रिजोम्बा की क्षत-विक्षत लाश से लिपटकर बैठा हुआ है। उसे याद आया, जिगमे की लाश वह जिमिथांग से लादकर लाया था और नामजांगसू नदी में उसका सत्कार किया था, अब उसके पास रिजोम्बा की लाश है।...पहले मामा चोरगेन आपा कारमा थिनले, उसके बाद जिगमे और अब रिजोम्बा, अपने प्रिय, कलेजे के टुकड़े की तरह करीबी लोगों को काट-काटकर उसे नदी में बहाना पड़ रहा है। उसका सिर चकरा रहा है, कलेजा पत्थर बन गया है, वह कुछ भी सोच नहीं पा रहा है।"[52]

येशे दोरजी थोंगछी ने अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में मनपा समाज और संस्कृति को ही कथा का मुख्य आधार बनाया है, लेकिन 1962 के भारत-चीन युद्ध को भी उपन्यास में इतने अच्छे ढंग से सुनियोजित किया है कि ऐसा लगता है दोनों कथाएँ एकसाथ चल रही हों। संस्कृति के बहाने समाज और राजनीति का जीवंत चित्रण कर येशे दोरजी थोंगछी ने अपने लेखकीय कौशल का परिचय दिया है।

संदर्भ:

---

[1] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 200

[2] निर्मल कुमार बोस, भारतीय आदिवासी जीवन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, 2013, पृ. 48

[3] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 22

[4] वही, पृ. 29

[5] वही, पृ. 110

[6] वही, पृ. 133

[7] वही, पृ. 79

[8] वही, पृ. 109

[9] वही, पृ. 66

[10] वही, पृ. 135

[11] वही, पृ. 145

[12] वही, पृ. 24

[13] वही, पृ. 94

[14] वही, पृ. 93

[15] वही, पृ. 18-19

[16] वही, पृ. 20

[17] वही, पृ. 20 -21

[18] वही, पृ. 270

[19] एम. ए. पद्मानाभाचार, राजभाषा ज्योति (पत्रिका), अंक- 38, अक्टूबर, 2020 - मार्च, 2021, पृ. 15

[20] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 45

[21] वही, पृ. 14

[22] वही, पृ. 15

[23] वही, पृ. 51

[24] वही, पृ. 147

[25] वही, पृ. 147

[26] वही, पृ. 101

[27] वही, पृ. 107

[28] वही, पृ. 153

[29] वही, पृ. 185

[30] वही, पृ. 269-270

[31] रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2011, पृ. 374

[32] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 68

[33] वही, पृ. 74

[34] वही, पृ. 76

[35] वही, पृ. 76-77

[36] रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, पृ. 375

[37] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 78-80

[38] वही, पृ. 81

[39] वही, पृ. 82

[40] वही, पृ. 100

[41] वही, पृ. 135

[42] रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद, पृ. 410

[43] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 118-119

[44] वही, पृ. 67

[45] वही, पृ. 67-68

[46] वही, पृ. 80

[47] एल. एन. चक्रवर्ती, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006, पृ.25

[48] रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद, पृ. 378

[49] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ.104

[50] वही, पृ. 102

[51] वही, पृ. 147

[52] वही, पृ. 148-149

अध्याय- 4

‘शव काटनेवाला आदमी’ उपन्यास का शिल्प

4.1 भाषा

4.2 कथा शिल्प

4.1 भाषा

भाषा एक माध्यम है– चिंतन का और अभिव्यक्ति का। अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में भाषा संकेतों पर आधारित होती है। दैनिक जीवन की ओर हम दृष्टि दौड़ाएँ तो हम पाएँगे कि संकेतों की भाषा से प्राय: अनेक बार काम लिया जाता है। मूक भाषा से, संकेत से अपने भाव या विचार व्यक्त करने के उदाहरण प्रत्येक भाषा के साहित्य में मिलते हैं। इस तरह के दैनिक जीवन के संकेत बहुत ही सशक्त भाषा का काम करते हैं तथा प्रत्येक संस्कृति में इसकी अपनी अलग-अलग परम्पराएँ होती हैं। आँखों के माध्यम से अपनी बात कहने के उदाहरण तो अनेक मिलते हैं। लेकिन सबसे प्रामाणिक और सफल माध्यम बोलकर कहने तथा सुनकर समझने वाली भाषा ही है। यही माध्यम सबसे अधिक सुविधाजनक है, अत: इसी का प्रयोग सर्वाधिक होता है। सामन्यत: जो बोलने और सुनने पर आधारित है, उसी को भाषा कहते हैं।

भाषा के द्वारा ही मनुष्य ने अपनी संस्कृति व सभ्यता को विकसित कर भावी पीढ़ी तक पहुँचाया है। समाजवैज्ञानिकों का मानना है कि भाषा का विकास सामाजिक अंत: क्रिया द्वारा होता है। इस तरह भाषा मनुष्य के विकास की आधारशिला है। भाषा शब्द 'भाष्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'बोलना'। अत: भाषा में बोलना समाहित है। भाषा संस्कृति का आधार, साहित्य का आधार, सामाजिक प्रक्रिया का आधार, मनुष्य के चिंतन का माध्यम व संप्रेषण का भी आधार है। भाषा से ही हमारा बौद्धिक, मानसिक, संवेगात्मक व सामाजिक विकास हुआ है। एक तरह से भाषा से ही मनुष्य का विकास हुआ है। अत: भाषा अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। प्रत्येक रचनाकार अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को सशक्त भाषा के माध्यम से ही संप्रेषित करता है। अत: साहित्यकार अपनी भाषा द्वारा रचना को कलात्मक एवं सहज, सुंदर बनाने का प्रयास करता है। 'भाषा वक्ता

के विचार को श्रोता तक पहुँचाती है, अर्थात वह विचार विनिमय का साधन होती है। साधारणत: "जिन ध्वनिचिह्नों के द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है, उसकी समष्टि को भाषा कहते है।"[1]

भाषा शब्द और अर्थ के संयोग से आकार ग्रहण करती है। 'शब्द' उसका शरीर और 'अर्थ' उसकी आत्मा कही जाती है। उसका मूल कार्य संप्रेषण है। स्पष्ट है, भाषा संप्रेषण व्यवस्था है जिसका सीधा संबंध संरचना से होता है। 'संरचना' से संप्रेषण संभव है। इस प्रकार संरचना भाषा के रचनात्मक निर्माण की प्रक्रिया है। भाषा की नियमित व्यवस्था अथवा भाषा के व्यवस्था आधारित नियम को संरचना कहा जाता है। संरचना का अभिप्राय भाषा के उस रूप से है, जो एक भौतिक प्रक्रिया के रूप में हमारे मुख से उच्चरित होकर कानों द्वारा ग्रहण किया जाता है। अत: किसी भाषिक इकाई की संरचना उस इकाई के भीतर पाए जानेवाले सम्बन्धों की व्यवस्था है।

बाबूराम सक्सेना अपनी किताब में कहते हैं- "भाषा विचार करने का भी साधन है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि यदि कोई भी विचार करने बैठें तो भाषा की मदद के बिना नहीं कर सकते। जिसको संदेह हो वह प्रयत्न करके देख ले। साधारण रीति से हम कह सकते हैं कि ध्वनियाँ विचारों से उद्भावित होती हैं और विचार ध्वनियों से, पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर विद्वानों का मत है कि इन दोनों के बीच में एक माध्यम है– एक रूप या प्रतिमा। इसको चाहे ध्वनि-प्रतिमा कहें या विचार-प्रतिमा, पर यही ध्वनियों और विचारों में संबंध उपस्थित करती है। किसी विचार के मन में आने के लिए इतना जरूरी है कि विचार और यह प्रतिमा आ जाय, मुख से बोली ध्वनियाँ चाहे आयें चाहे नहीं। विचारों के साथ-ही-साथ ये प्रतिमाएँ भी बनती-बिगड़ती रहती हैं।"[2]

भाषा समूचे समाज को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। मनुष्य अपनी अनुभूति मन से ग्रहण करता है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही संभव है। तात्पर्य भाषा मनुष्य की अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। भाषा हमारे आचारों-विचारों का संप्रेषण करती है। साहित्य की किसी भी विधा को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा और शैली की आवश्यकता होती है। इस बारे में डॉ. श्याम सुंदरदास कहते हैं, "भाषा भावों की संवादिका है। यह एक विशेष क्रम से व्यवस्थित होकर हमारे मन की बात दूसरों के मन तक पहुँचाने और उसके द्वारा उसे प्रभावित करने में समर्थ होती है।"[3]

मनुष्य जिन ध्वनि चिह्नों का उपयोग कर आपस में विचार विनिमय करता है, उन्हें ही भाषा के नाम से जाना जाता है। इस संबंध में भोलानाथ तिवारी लिखते हैं– "भाषा उच्चारण अवयवों द्वारा उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा समाज के लोग आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं।"[4]

भाषा अनुभव तथा अनुभूति को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। समाज का संपर्क सूत्र भाषा ही है। इस तरह समाज अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए कभी शब्दों तो कभी वाक्यों को प्रयोग में लाता है। वह कभी इशारों से भी अपने विचार या भाव व्यक्त करता है। लेकिन इशारों या संकेतों द्वारा बृहत विचार विनिमय नहीं हो सकता। इससे विदित होता है कि विचार-विनिमय का प्रमुख साधन भाषा ही है। मनुष्य का बर्ताव, चिंतन, जीवनमूल्यों की ओर देखने की दृष्टि समाज के अनुरूप होती है। समाज का निर्माण भी मनुष्यों के बीच के संबंध से ही संभव होता है। अत: कहना अनुचित न होगा कि मनुष्य और समाज को एक सूत्र में बांधने का काम भाषा करती है। अत: समाज में और समाज निर्मित साहित्य में भाषा का अपना विशेष महत्व होता है। समाज को जानने का काम भाषा द्वारा ही होता है।

व्यक्ति तथा साहित्यिक अपने विचार भाषा द्वारा ही समाज तक पहुँचाता है। भोलानाथ तिवारी कहते हैं– "सामान्य बोलचाल की भाषा जीवनानुभवों से जोड़कर संभाव्य साहित्यिक सत्य से अंकित करके साहित्यकार जिसका सर्जन करता है, उसे साहित्य कहते हैं। वह लोक भाषा में सर्जनात्मक सौंदर्य, लाक्षणिकता, व्यंग्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता, ध्वन्यात्मकता, संगीतात्मकता आदि के प्रयोग से संस्कारित तथा साहित्यिक रूप प्रदान करता है।"[5] संक्षेप में कहें तो भाव तथा भाषा का समन्वय साहित्य है। अत: स्पष्ट है कि भाषा और साहित्य का संबंध अटूट है। भाषा के बिना साहित्य सृजन हो ही नहीं सकता। साहित्य भाषा के जरिए जीवन का चित्रण है। भाषा का साहित्य में निर्विवाद महत्व होता है। भाषा का समाज और साहित्य से अभिन्न संबंध बना हुआ है। भाषा के बिना न तो किसी समाज की कल्पना की जा सकती है और न ही साहित्य की।

उपन्यास जिस समग्र रूप में समाज का चित्रण करता है, उसके लिए भाषा के सघन प्रयोग की उसी सीमा तक आवश्यकता होती है। यह कहा जा सकता है कि औपन्यासिक प्रगति का एक आधार उस भाषा की समृद्धि भी है जो उसमें प्रयुक्त होती है। साहित्य और भाषा घनिष्ठ रूप में पारस्परिक संबंध रखते हैं। इस संबंध में शांतिस्वरूप गुप्त लिखते हैं– "भाषा उपन्यासकार के हाथों में एक शक्तिशाली उपकरण है। वह शब्द योजना, वाक्य संरचना, वाक्य विन्यास और ध्वनि पैटर्न के प्रयोग द्वारा अपनी बात को विशेष प्रभावशाली ढंग से संप्रेषित करने में समर्थ होता है। पाठक पर विशेष प्रभाव डाल सकता है।"[6] इसीलिए उपन्यास की भाषा सहज, सरल एवं स्वाभाविक होती है तो उपन्यास भावात्मक एवं प्रभावशील बनता है। वस्तुत: भाषा का प्रयोग तत्कालीन समाज के दृष्टिकोण से होता है तो अधिक श्रेयस्कर होता है। परंतु उसमें सरलता का होना अनिवार्य है, जिससे आम जनता परिचित हो। जब उपन्यास की भाषा सरल और स्वाभाविक होगी

तभी परस्पर समन्वय होगा अन्यथा अलगाव सा बना रहेगा, जिससे पाठक उससे अपने को एकाकार नहीं कर पाएगा।

उपन्यासकार अपने बनाये औपन्यासिक संसार को व्यक्तियों, स्थानों, भावों, विचारों एवं परिस्थितियों के वैविध्य से पूर्ण करता आया है और जिसे वह पाठक के मन में ज्यों-का-त्यों उतारना चाहता है। इस लहजे से उपन्यासकार के लिए भाषा मात्र भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं है, वह इसके साथ उसके व्यक्तित्व, संस्कार और परिवेश को भी उद्घाटित करती है। एक उपन्यासकार का इसी कारण भाषा से सहज संबंध भी दृष्टिगोचर होता है। कृति से उसके भाषाई स्वरूप का अंदाजा लगाया जा सकता है। "रचनाकार के समक्ष भाषा का संकट समय के साथ-साथ उत्पन्न होता रहता है और अगर वह समय की नब्ज को पकड़कर आधुनिक जीवन के मुहावरों को तलाश कर उसके अनुरूप अपनी भाषा गढ़ता है।"[7]

विश्व की सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास में अनुवाद की विशेष भूमिका रही है।अच्छा अनुवाद करने के लिए दोनों भाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है, जिस भाषा से जिस दूसरी भाषा में अनुवाद किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सिर्फ व्याकरण की जानकारी पर्याप्त नहीं है, उसको प्रयोग करने वाले समाज की संस्कृति, रीति-रिवाज आदि का पूरा ज्ञान होना भी आवश्यक है। अनुवाद एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा विभिन्न राष्ट्रों की सांस्कृतिक निधियां आज हमारे सामने हैं। अनुवाद के माध्यम से ही हम एक दूसरे की सांस्कृतिक विरासत के भागीदार बने हैं। अनुवाद ने न केवल विभिन्न साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है बल्कि भाषा के विकास में भी इसके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।साहित्यकार भाषा के माध्यम से ही उपन्यास में स्थिति का वर्णन करता है और अनुवादक ने भी इस बात का ध्यान रखा है कि उस उपन्यास का उस स्थिति का कोई अर्थ परिवर्तन न हो जो रचनाकार बताना चाहता है।

येशे दोरजी थोंगछी जी का उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' एक अनूदित उपन्यास है। यह उपन्यास मूल रूप से असमिया में लिखा गया है और इसे दिनकर कुमार ने हिन्दी में अनूदित किया है। दिनकर कुमार जी ने असमिया से हिन्दी अनुवाद करते हुए भाषा की सहजता का खास ख्याल रखा है, जिससे अनुवाद होने के बावजूद रचना का प्रवाह बाधित नहीं होता और मूल रचना जैसा ही आनंद पाठक को मिलता है। मूल उपन्यास में प्रयुक्त स्थानीय मनपा शब्दों को अनूदित उपन्यास में भी ज्यों-का-त्यों ही रखा गया है, जिससे उपन्यास की मौलिकता और जीवंतता सुनिश्चित हो सकी है।

स्थानीय भाषा के शब्द कथासाहित्य की भाषा को एक नया आयाम देते हैं। इन शब्दों के प्रयोग से स्थान या क्षेत्रविशेष अपनी संपूर्णता और स्वाभाविकता के साथ अंकित हो जाते हैं। येशे दोरजी थोंगछी ने अपने उपन्यास में भाषा पर विशेष ध्यान दिया है। उन्होंने अपने उपन्यास में स्थानीय भाषा को भी शामिल किया है। थोंगछी जी ने मनपा समाज के स्थानीय जीवन, रहन-सहन, जीविकोपार्जन आदि को खुली आँखों से देखा और अनुभव किया है। इसलिए उनमें इन बातों की गहरी समझ है। यही कारण है कि थोंगछी जी अपने उपन्यास में स्थानीय भाषा के शब्दों के प्रयोग के जरिये पूरे मनपा समाज को साक्षात कर देते हैं। वह बड़ी सहजता से चरित्र एवं परिवेश को जीवंत कर देते हैं। मनपा पात्रों को उपन्यास में विशेष पहचान देने के लिए उनके द्वारा मनपा शब्दों का उच्चारण करवाकर उपन्यास की भाषा को और अधिक प्रभावी बनाया गया है। ऐसे शब्दों के प्रयोग से इन पात्रों के व्यक्तित्व में निखार आता है और उपन्यासकार अपनी बात को सुस्पष्ट तरीके से कह पाता है। मनपा भाषा के शब्दों के कारण उपन्यास की विषय-वस्तु और उसके चित्रण में सजीवता और जीवंतता आ गई है। इसके अलावा तत्सम, अंग्रेज़ी, अरबी-फारसी आदि विभिन्न भाषा के शब्दों का मिश्रण थोंगछी जी के इस उपन्यास को प्रभावशाली और यथार्थवादी बनाता है।

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में थोंगछी जी और अनुवादक दिनकर कुमार जी के शब्द-प्रयोग को निम्नांकित बिन्दुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है:

अँग्रेजी शब्द :

येशे दोरजी थोंगछी ने अपने उपन्यास में एक ओर जहाँ क्षेत्रीय भाषा के शब्दों का इस्तेमाल किया है, वहीं पर कहीं-कहीं अँग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है जो पात्र और परिस्थिति के सर्वथा अनुकूल है। यह उपन्यास को यथार्थवादी, कलात्मक और सुंदर भी बनाता है।थोंगछी जी के उपन्यास में शुरू से अंत तक जगह-जगह हमें अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। उपन्यास के एक प्रसंग में एक पुलिस अधिकारी (ओसी साहब) की भाषा का नमूना देखा जा सकता है-

"ठीक है आप लोगों का **एफआईआर** हमने **एक्सेप्ट** किया। **केस रजिस्टर** कर लिया है। हमने अपना काम **आलरेडी** शुरू कर दिया है।... तुम लोगों ने **अननेसेसरी** इसके साथ ज्यादा मारपीट की, ऐसा लग रहा है। **केस** के **क्रिटिकल** होने का **चांस** है।...शाम तक इसका सूजा हुआ चेहरा ठीक हो जाने पर **मजिस्ट्रेट** के सामने इसे ले जाकर **प्रोडयूस** करना होगा। अगर ठीक नहीं हुआ तो कल **प्रोडयूस** करना होगा। ताउजिंग साहब, आपने जो कार्रवाई करनी है, शुरू कर दीजिये। दो **विटनेस** से अभी **स्टेटमेंट** ले लीजिए। **सिजरलिस्ट** बनाकर **विटनेस** से दस्तखत करवा लीजिए।"[8]

इस उपन्यास के कुछ पात्र कहीं-कहीं पूरी तरह अंग्रेजी में ही अपनी बात रखते हैं। लेकिन ऐसे उदाहरण कम हैं। ज़ाहिर है ऐसे प्रसंगों की अधिकता से उपन्यास की भाषा में समस्या पैदा हो सकती थी। लेकिन कुछेक प्रसंगों में इस तरह के प्रयोग से उपन्यास अधिक यथार्थवादी और जीवंत हो गया है। उपन्यास के एक प्रसंग में मजिस्ट्रेट साहब पुलिस

अधिकारी को झिड़कते हुए अपनी बात कहते-कहते अभ्यास वश स्वाभाविक तौर पर अंग्रेजी में बोलने लगते हैं-

"दाव लेकर खदेड़ने से ही **अटेम्प्ट टू मर्डर** हो जाता है क्या? सुना है आप के लोगों ने उसकी बुरी तरह पिटाई भी की है। अकारण ही उसकी पिटाई करने के कारण दिरांगजंग गाँव के लोग क्षुब्ध हो उठे हैं। वे लोग **ग्रुप** बनाकर **टाउन** की तरफ आ रहे हैं। **Law and order problem** पैदा होने का **चांस** है। **"You mobilize your persons to contain law and order problem. And listen, produce Aao Thampa in my court within no time.""**[9]

इसके अलावा पूरे उपन्यास में बीच-बीच में अंग्रेजी के कई शब्दों का प्रयोग हुआ है। **सेंटीमेट, अगेंस्ट, होम मिनिस्टर, कम्युनिकेशन डिसरापशन, ड्रापिंग जोन, सिग्नल रेजिमेंट, इन्टरेस्टिंग, पोस्टमार्टम रिपोर्ट, एक्सेप्ट, स्टेटमेंट, इंजर्ड, मोलेस्टेसन, अरेस्ट, एक्शन, एंगेज, इंचार्ज** आदि जैसे कई शब्द इसके उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

तत्सम शब्द :

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में तत्सम शब्दों का यथा अवसर प्रयोग कई स्थानों पर देखने को मिलता है। यद्यपि ऐसे शब्द-प्रयोग कम दिखाई पड़ते हैं। मूल असमिया उपन्यास में संभव है तत्सम शब्दों की संख्या कुछ अधिक हो। इसका एक कारण यह हो सकता है कि असमिया भाषा के शब्द भंडार में संस्कृत के ढेर सारे शब्द हैं। लेकिन अनूदित प्रस्तुत उपन्यास में तत्सम बहुलता नहीं दिखाई पड़ती। अनुवादक दिनकर कुमार जी ने अनुवाद की भाषा को बोलचाल की भाषा के नजदीक रखने का प्रयास किया है, जो अच्छा ही है। इससे उपन्यास भाषा के स्तर पर बोझिल होने से बच गया है।

राशि, **लज्जा**, **मृतक**, **पुण्य**, **नग्न**, **लुप्त**, **घृणा**, **तीर्थ**, **नृत्य**, **विवाह**, **पुत्र** ,**मृत्यु**, **जन्म**, **दु:खों**, **सूर्य** आदि जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग इस उपन्यास में दिखाई पड़ता है। ज़ाहिर है ये ऐसे तत्सम शब्द हैं जो आम बोलचाल की भाषा में रच-बस गए हैं।

स्थानीय शब्द :

जैसा कि इस अध्याय में पहले भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि उपन्यासकार ने स्थानीय भाषा (मनपा) के शब्दों का बहुत ही अनुकूल और सुंदर प्रयोग इस उपन्यास में किया है। मनपा भाषा के शब्दों के प्रयोग ने मनपा लोक और संस्कृति को इस उपन्यास में जीवंत कर दिया है। अनुवादक ने मनपा शब्दों को यथास्थान वैसे ही रहने दिया है और उन शब्दों का अर्थ प्रत्येक अध्याय के अंत में प्रस्तुत कर दिया है ताकि पाठक को अर्थग्रहण में किसी तरह की समस्या न हो।

उपन्यास के पहले ही अध्याय में शुरुआत में ही उपन्यास के मुख्य पात्र दारगे नरबू का परिचय देते हुए उपन्यासकार लिखता है-

"दिरांगजंग गाँव और समूचे जिले में आजकल वह **आउ थांपा**, **आपा थांपा**, **आजांग थांपा** के नाम से ही जाना जाता है। मनपा भाषा में **आउ** का अर्थ बड़ा भाई होता है, **आपा** का अर्थ पिता, दादा, बुजुर्ग इत्यादि होता है, **आजांग** का अर्थ मामा और **थांपा** का अर्थ शव काटनेवाला आदमी होता है।...उसका घर दिरांगजंग गाँव से कुछ दूरी पर **थांमपानांग** यानी शावकाटने वाली जगह नामक निर्जन स्थान पर है। पोशाक के नाम पर बेरंग हो चुकी ऊनी टोपी, सेना की पुरानी धुएँ रंग की फटी हुई कमीज के ऊपर कभी पुरानी लाल रंग की अरंडी की **आलिफुदुंग** और कभी जगह-जगह से फटी हुई, पैबंद लगी हुई गर्म काला **छुपा**।"[10]

उपन्यास के एक प्रसंग में दारगे नरबू की पत्नी उसे फटकारते हुए कहती है-

"तुम तो लाश काटने के अलावा कोई काम नहीं करते! लाश काटोगे और बिना मतलब भटकते फिरोगे। गाँव में घर-घर जाकर **वांगछांग** और **आराक** माँगकर पीते रहोगे!"[11]

यहीं आगे उपन्यासकार लिखता है-

"फटकार सुनते हुए पत्नी का परोसा हुआ मडुका के **झान** के टुकड़े के कौर बनाकर कद्दू या मूली की **सुरपी** या **लिबिसूरा** के साथ बनाए गए व्यंजन गरकू में डुबो-डुबोकर दारगे परम तृप्ति के साथ खाता रहता है।"[12]

उपर्युक्त दो उद्धरणों में मनपा लोगों के खाने-पीने की चीजों के लिए मनपा शब्दों के प्रयोग के जरिए उस संस्कृति की वास्तविक झलक प्रस्तुत करने की कोशिश थोंगछी करते हैं।

मनपा लोग किसी बात पर आश्चर्य व्यक्त करने के लिए **'लामखिन ऐ'** कहते हैं। पूरे उपन्यास में कई जगहों पर इस पद का सुंदर और सटीक प्रयोग किया गया है।

लोसर उत्सव के मौके पर मनपा लोग एक-दूसरे के घर उपहार लेकर जाते हैं। ऐसे ही एक अवसर का उल्लेख इस उपन्यास में हुआ है जहाँ इस अवसर पर दिए जाने वाले उपहारों के लिए मनपा शब्दों का प्रयोग किया गया है-

"उसी तरह दारगे और रिजोम्बा के परिवार में भी सेरू गाँव के उस मशहूर और प्रभावशाली परिवार से **खापसी** और अन्य चीज़ें आती हैं। उन उपहारों में लड़कों के लिए **सूपा** आता है, लड़कियों के लिए **सिंका**, **पांगतेन** आदि कपड़े आते हैं।"[13]

इसके अलावा पूरे उपन्यास में **खाटा**, **सिंका**, **दुनछांग**, **जालिंग रोदिंग**, **जंगपोन**, **जांगछान**,**पसी**, **माथांग**, **जौम**, **लासो कारिनछे**, **लपोन रिम्पोछे**, **कुकमा**, **कुनचोकसूम**,

शोमबा, **खेई**, **मो**, **मने**, **दारसिंग**,**खांपसे**, **ब्रोक**, **दासांग, आनयि**, **चोगे**, **छामिन**, **नाचांग**, **केन** आदि जैसे ढेरों शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो इस उपन्यास में मनपा समाज और संस्कृति के रंग और उसकी सुगंध भरते हैं।

अरबी, फारसी शब्द :

प्रस्तुत उपन्यास का अनुवाद करते हुए दिनकर कुमार जी ने भाषा को आम बोलचाल की भाषा के निकट रखने का पूरा प्रयास किया है और इसलिए वे आम बोलचाल में प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे शब्द मूल रूप से चाहे जिस भी भाषा से आए हों। यही कारण है कि अरबी-फारसी के शब्द भी, जो अब हमारी रोज़मर्रा की ज़िंदगी का हिस्सा हो गए हैं, इस उपन्यास में खूब दिखाई पड़ते हैं।

स्पष्ट है कि अनूदित उपन्यास की भाषा अत्यंत प्रभावशाली है जो पाठक को शुरू से आखिर तक बाँधे रखती है, कहीं उसे ऊबने नहीं देती। प्रवाहपूर्ण भाषा होने के साथ-साथ उपन्यास की भाषा में कई स्थलों पर काव्यात्मकता भी दिखाई पड़ती है। इसके अलावा कुछेक स्थलों पर उपन्यास में काव्य पंक्तियाँ भी मौजूद हैं। थोंगछी ने कविता का प्रयोग कर उपन्यास में सुन्दरता लाने की सफल कोशिश की है। अनुवादक ने काव्य पंक्तियों का अनुवाद करते हुए इस बात का ध्यान रखा है कि उपन्यासकार ने असमिया भाषा में जिस तरह से कविता में अपनी बात को व्यक्त किया है, वह ठीक उसी तरह अनुवाद में आ जाए। जैसे उपन्यास के एक प्रसंग में छठे दलाई लामा की एक कविता में अगले जन्म में लौटने की बात की गई है-

सफेद रंग के बगुले

अपने पंख दे दो मुझे ।

लिथांग से लौटूँगा मैं

अधिक दूर तक नहीं जाऊँगा मैं ।[14]

थोंगछी जी ने पात्रों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिए कई स्थलों पर व्यंग्य का सहारा लिया है। जो बात सीधी, अभिधात्मक भाषा से पूरी तरह प्रकट नहीं होती, उसे व्यंग्य के द्वारा प्रकट किया जाता है। समाज के दम्भ, जड़ता, पुराने रिवाजों तथा अन्धविश्वासों आदि विषयों पर प्रहार करने के लिए उपन्यास में इसका प्रयोग किया गया है।

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि इस उपन्यास की भाषा इस उपन्यास का एक सशक्त पक्ष है। इस उपन्यास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस कृति का असमिया से हिन्दी में अनुवाद होने के बाद भी यह अत्यंत सुव्यवस्थित और सुरुचिपूर्ण है। अनुवादक दिनकर कुमार जी ने किसी भी मूल भाव में बदलाव नहीं आने दिया है। साथ-ही-साथ उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा है कि वाक्यों की निरंतरता टूटने न पाए। मनपा समुदाय में प्रचलित शब्दों का प्रयोग उपन्यास के लगभग प्रत्येक पन्ने पर है, जिससे उपन्यास में जीवंतता बनी हुई है। इससे मनपा समुदाय की संस्कृति का वातावरण इस उपन्यास में बना हुआ है।

4.2 कथा शिल्प

साहित्यकार जिस रीति या पद्धति से अपने भावों-विचारों को अपनी रचना में अभिव्यक्त करता है, उसे ही हम शिल्प कहते हैं। शिल्प शब्द की उत्पत्ति शिल धातु और पक प्रत्यय से हुई है। शिल्प अँग्रेजी शब्द 'टेकनीक' का हिन्दी अनुवाद है। टेकनीक का अर्थ है – "तकनीक, प्रविधि, शिल्प विधान, कलाप्रवीनता।"[15] सर्जक जितना कुशल कलाकार होगा, उसकी कृति उतनी ही आकर्षक होगी। अत: शिल्प निर्माण कौशल है। शिल्प का अर्थ तरीका, विधान अथवा ढंग भी होता है। अर्थात् किसी वस्तु / रचना को रचने की जो विधियाँ होती हैं, उनके समुच्चय को शिल्प विधि के नाम से जाना जाता है। कृति के निर्माण की पद्धति तथा उन पद्धतियों के सम्यक् संयोजन को शिल्प कहते हैं। इसका तात्पर्य किसी साहित्यिक कृति की संरचना से है। कालिका प्रसाद अपने बृहत् हिन्दी कोश में इसका अर्थ बताते हैं "हस्त-कौशल का निर्माण कला। हाथ से काम करने का हुनर या हस्तकला याने शिल्प।"[16]

हिन्दी में शिल्प शब्द का अर्थ शब्द रचना के आधार पर हस्तकौशल, कारीगरी तथा कलाविधि से लिया जाता है। शिल्प विधि के अंतर्गत वे समस्त तत्व आ जाते हैं जो औपन्यासिक स्वरूप का निर्माण करते हैं। परमानंद श्रीवास्तव रचना के शिल्प के बारे में लिखते हैं- "रचना का वक्तव्य एक महत्वपूर्ण शिल्प के भीतर से ही व्यक्त होता है और उसके द्वारा ही संप्रेषित होता है। रचना यदि अभिप्रेत को उचित प्रभाव के साथ व्यक्त करने में सफल होती है तो उससे 'शिल्प' का गौरव बढ़ता है।"[17]

लेखक अपनी कृति के माध्यम से क्या कहना चाहता है, इस पर उसका शिल्प आधारित होता है। कथ्य रचना की आत्मा होती है। यदि कथ्य को आत्मा माना जाये तो

शिल्प उसका शरीर माना जायेगा। आत्मा के अनुरूप ही लेखक रचना के शरीर को बनाता है। अत: प्रत्येक रचनाकार का अपना-अपना अलग शिल्प होता है। डॉ. हरदयाल अपनी किताब 'हिन्दी कहानी : परंपरा और प्रगति' में लिखते हैं- "जब हम शिल्प की बात करते हैं तब हम लगभग हर चीज की बात करते हैं क्योंकि शिल्प ही वह साधन है जिसके माध्यम से लेखक का अनुभव जो कि उसकी विषयवस्तु है, उसे अपनी ओर ध्यान देने के लिए विवश करता है, शिल्प एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा रचनाकार अपने विषय को खोजता है, उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है, उसी के माध्यम से वह उसके अर्थ को संप्रेषित करता है, और अन्त में उसका मूल्यांकन करता है।"[18]

अत: स्पष्ट है कि अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देने के लिए लेखक जिस कला-कौशल का सहारा लेता है, वह उसका शिल्प है। शिल्प एक बाहरी उपकरण है। इसका काम है भावों को सजाना-सँवारना। रचना को सफल बनाने के लिए शिल्प तथा भाषा की आवश्यकता होती है। भाव के अनुसार शिल्प का गठन करना एक अच्छे रचनाकार का गुण होता है। अत: कहना अनुचित न होगा कि आंतरिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए शिल्प का सहारा लेना पड़ता है। कथा-शिल्प की प्रमुख विशेषता उनकी कलात्मक निस्संगता है। कथाकार के लिए अपनी रचना के लिए अनुकूल सुगठित शिल्प की तलाश करना ज़रूरी है, अन्यथा कहानी अथवा उपन्यास लेखक की व्यक्तिगत डायरी मात्र बनकर रह जाती है।

कथा-शिल्प की विभिन्न प्रविधियों तथा येशे दोरजी थोंगछी के उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' के शिल्प पर कुछ बिन्दुओं के माध्यम से विचार किया जा सकता है:

पूर्वदीप्ति शैली (फ्लैशबैक):

उपन्यास की कथावस्तु के विकास के लिए लेखक पूर्वदीप्ति शैली का भी प्रयोग करता है। पूर्वदीप्ति को फ्लैशबैक पद्धति भी कहा जाता है। कथा में कोई घटना पहले घट गई हो, लेकिन उसका वर्णन नहीं किया गया हो और बाद में उपयुक्त समय पर उस घटना को उपन्यास में पहले से चल रहे चल रहे प्रसंग के साथ जोड़कर जब कथावस्तु का विकास किया जाता है तो उसे फ्लैशबैक या पूर्वदीप्ति पद्धति कहते हैं। इस पद्धति में उपन्यासकार किसी पात्र के माध्यम से अतीत की घटनाओं को आगामी संदर्भ से जोड़ता हुआ प्रस्तुत करता है। इस पद्धति का प्रयोग लेखक इसलिए करता है ताकि पाठक को वर्तमान प्रसंग के संदर्भ को समझने में सहायता मिले। उपन्यासकार किसी पात्र के माध्यम से पुरानी घटनाओं को, जो पहले घट चुकी हैं, नवीन संदर्भ से ताजा करके पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। थोंगछी जी ने प्रस्तुत उपन्यास में इस पद्धति का उपयोग खूब किया है। लगभग आधा उपन्यास पूर्वदीप्ति शैली में लिखा गया है। उपन्यास के दूसरे अध्याय में ही पूर्वदीप्ति शैली दिखाई पड़ती है, जब दारगे नरबू अपने जन्मस्थान छुरवी गाँव को याद करता है, जहाँ उसका बचपन गुजरा था- "उसकी आँखों के सामने बीच-बीच में अस्पष्ट और धुँधले रूप में कौंधता है उसके प्यारे जन्म स्थान, जहाँ बचपन गुजरा था, उस छुरवी गाँव का चित्र।...याद आते हैं गाँव के कतारबद्ध पत्थरों के घर, घरों के बीच-बीच में खेतों को घेरने वाली बाँस की बाड़ों के बीच में कीचड़ या धूल से भरी हुई, घोड़ा, गाय आदि की विष्ठा की बदबू वाली गलियाँ, घरों के बीच-बीच में खुली जगहें।...उसकी आँखों के सामने कौंधते रहते हैं बचपन में गाँव में देखे गए कितने सारे चेहरे, कानों में बजती रहती है कितनी सारी आवाजें।"[19]

थोंगछी जी ने उपन्यास की घटनाओं को आगे बढ़ाने के लिए और साथ ही उसमें पाठक की रोचकता को बनाए रखने के लिए पूर्वदीप्ति शैली का सुंदर और भरपूर उपयोग इस उपन्यास में किया है। दलाई लामा के तवांग जिले के बीच से भारत में आगमन और तवांग में उनके भव्य स्वागत के मौके पर दलाई लामा का रिजोम्बा को विशेष आशीर्वाद देने की घटना को दारगे नरबू याद करता है- "दारगे का मन अतीत में डूबा हुआ था, इसीलिए उसे रात भर नींद नहीं आई। भोर में उसे हल्की-सी नींद आई थी, उसी नींद में धुंधले दृश्य की तरह उसकी आँखों में कौंधा था। दलाई लामा का स्वागत करने के लिए उसका और रिजोम्बा का सुरवा साम्बा में दूसरों के साथ कतार में खड़ा होना, दलाई लामा का रिजोम्बा के पास आकर अचानक ठिठक जाना...।"[20]

आउ थांपा के मन में उस दिन की अमिट यादें बनी हुई हैं, जब रिजोम्बा की माँ का देहान्त होता है। दारगे बुआ को याद करता है- "बुआ की यह सब बातें बार-बार उसके कानों में बजने लगी थीं। उसका दुबला लम्बा कद, उसका खूबसूरत मुखड़ा, उसकी चाल, उठने-बैठने का अंदाज, काम करने, हाथ-पैर पोंछने, बच्चों को स्तन निकालकर दूध पिलाने, खास अंदाज में खाना खाने, हँसने, रोने, नाराज होने आदि कई दृश्य बार-बार दारगे की आँखों में कौंध रहे थे, फिर एक बार प्यारी बुआ को उसी चाल-चलन के साथ, उसी आवाज के साथ जिंदा देखने के लिए उसका मन हाहाकार कर उठा था।"[21] और इसी क्रम में दारगे अपने अतीत की अन्य तमाम स्मृतियों में खो जाता है।

पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग करते हुए थोंगछी जी अवलोकन बिन्दुओं को भी बदलते रहते हैं। भारत-चीन युद्ध के दौरान घटी घटनाओं को इस उपन्यास में उपन्यासकार अलग-अलग नैरेटरों द्वारा प्रस्तुत करता है, जिससे उन घटनाओं के प्रति अवलोकन-बिन्दु भी बदलते रहते हैं। जैसे उस युद्ध की घटना के बारे दारगे नरबू याद करता है कि किस तरह

रिजोम्बा की मौत होती है- "मगर कुछ कदम आगे बढ़ते उसने एक युवती की लाश देखी। लाश के बगल में खून से भीगी हुई एक टोदुंग कमीज नजर आई। कमीज को देखते ही दारगे पहचान गया कि वह रिजोम्बा की कमीज है। उसे अपने पैरों के नीचे से जमीन खिसकती हुई नजर आयी। उसने औंधे मुँह पड़ी हुई युवती के शव को उलट कर देखा, नहीं, रिजोम्बा की लाश नहीं है, किसी और युवती की लाश है। जमे हुए खून के बीच पड़ी हुई टोदुंग कमीज को उठाकर उसने गौर से देखा, हाँ, रिजोम्बा की फटी हुई आस्तीन वाला कमीज है। इसका मतलब युद्ध ने रिजोम्बा को मार दिया।"[22]

युद्ध और रिजोम्बा की मृत्यु की कथा का वर्णन फिर रिजोम्बा का भाई दंदू कुछ अलग ढंग से करता है – "मगर जब खबर आयी कि चीनी सेना ने उत्तरी बुमला पास पार कर तवांग पर हमला कर दिया है, तब कोई रुकने के लिए तैयार नहीं हुआ।...रात में ही गाँव से दंदू और अन्य ग्रामीण सूरज सिर पर चढ़ने के समय तक जांग गाँव पार कर अभी यशवंतगढ़ तक ही पहुँचे थे। भाग रहे लोगों की भीड़ में घर के सदस्य किधर गये थे, पता नहीं चल रहा था। मगर इस तरह दौड़ते समय भी दीदी ने उसका साथ नहीं छोड़ा था।...अचानक उसकी दीदी रिजोम्बा के मुँह से एक चीख निकली थी, उसकी पीठ से शोमबा सरककर गिर पड़ा था और कुछ दूर दौड़ने के बाद वह गिर पड़ी थी। आतंकित होकर उसने जमीन पर पड़ी हुई दीदी की तरफ देखा था, उसने उसे लहूलुहान होकर सड़क पर अचेत स्थिति में देखा था, दीदी के करीब बैठकर उसने जानने की कोशिश की थी कि उसे क्या हुआ था, तभी किसी ने उसका हाथ थाम कर 'भागो भागो' कहते हुए घसीटना शुरू कर दिया था, दीदी को छोड़कर अपनी जान बचाने के लिए वह फिर भागने लगा था..."[23]

आने सांगे यानी रिजोम्बा इसी घटना को याद करते हुए कुछ इस तरह बताती है- "हाँ, मैं गिर गयी थी, कुछ देर तक मैं लगभग बेहोश रही थी, मुझे लगा कि मैं मर चुकी हूँ, बार-बार कुंडली देखकर लामाओं की कही गयी भविष्यवाणी मेरे कानों में बज रही थी। सभी लामाओं ने मेरे मरने की बात कही थी। मगर मैं मरी नहीं। थोड़ी देर बाद ही मुझे होश आ गया। इस बीच गोलीबारी बंद हो चुकी थी। मेरे चारों तरफ शव और घायल लोग पड़े हुए थे।...वहाँ से मुझे हेलीकॉप्टर में बिठाकर मिसामरा आर्मी अस्पताल तक पहुँचाया गया था। वहीं गोली से जख्मी मेरे पैर को घुटने से नीचे काट दिया गया था।"[24]

उपर्युक्त प्रसंग में एक ही मौके की घटना के वर्णन में नैरेटर बदल जा रहे हैं और नैरेटर के बदल जाने से अवलोकन बिन्दु भी बदल जा रहा है। इससे एक ही समय की घटना कई रूपों में हमारे सामने प्रकट होती है। रिजोम्बा का भाई बताता है कि रिजोम्बा मर गई। फिर दारगे जब चीजों को याद करता है, तब वह याद करता है कि उसने रिजोम्बा की लाश का शव संस्कार भी कर दिया है। लेकिन जब उसी कथा को आने सांगे यानी रिजोम्बा खुद बताती है तो कथा बदल जाती है। अवलोकन बिन्दु के बदलने से एक ही समय के कथा के अलग अलग रूप दिखाई पड़ते हैं। फ्लैशबैक में नैरेटर का बदलना, नैरेटर के बदलने से अवलोकन बिन्दु का बदलना और अवलोकन बिन्दु के बदलने से कथा के स्वरूप का बदल जाना- यह इस उपन्यास के शिल्प की एक खास विशेषता है और जो निश्चित रूप से अनुवादक की नहीं है, मूल कथाकार की अपनी विशेषता है।

दृश्यात्मक प्रविधि:

दृश्यात्मक प्रविधि में कथाकार दो या अधिक पात्रों को रंगमंच पर बातचीत और कार्य-व्यापार में संलग्न कर स्वयं अदृश्य हो जाता है। पाठक उपन्यास पढ़ते समय अपने आसपास के परिवेश को भूल जाता है और मानसिक तौर पर एक ऐसे दृश्य के सामने पहुँच जाता है जिसमें कुछ पात्र संवाद और आंगिक-सात्विक अभिनय के साथ उसकी आँखों के

सामने होते हैं। वह सामने घटित कार्य-व्यापारों को देखता और पात्रों के वार्तालाप सुनता है। थोंगछी जी एक सजग कथाकार की तरह बार-बार उपन्यास में प्रकट होने से बचते हैं और पात्रों, घटनाओं तथा संवाद के माध्यम से कथा को आगे बढ़ाते हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं:

"सुअर की औरत! बेहया औरत! रंडी। जब मैं घर में नहीं था तब तुम आज किसके साथ बातें कर रही थी? बताओ, किसके साथ बातें कर रही थी?

– चाहे जिसके साथ बात करूँ, तुम्हें इससे क्या मतलब? मेरी खुशी। सिर्फ बात ही नहीं, मैं तो सोई भी हूँ। बातूनी पत्नी की ऐसी झिड़की सुनकर आउ थांपा का गुस्सा और भी बढ़ जाता है।

– क्या बोली? फिर से कहो तो एक बार! कहो! ...

मैं जानता हूँ मेरा घर में नहीं रहना तुम्हें अच्छा लगता है। ओह, तुम जैसी रंडी औरत को पहचानकर भी मुझे शादी नहीं करनी चाहिए थी। अपनी रिजोम्बा के मर जाने के कारण ही मैंने तुमसे शादी की।"[25]

उपर्युक्त प्रसंग से स्पष्ट है कि पति-पत्नी किसी बात पर आपस में झगड़ रहे हैं। यह एक दृश्य की तरह पाठक की आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। ऐसा लगता है मानो हम इसे सामने मंच पर घटित हो रहा देख रहे हों। पाठक को इस बात का आभास तक नहीं होता कि कथाकार कहीं आसपास ही विद्यमान है।

एक और प्रसंग द्रष्टव्य है:

“सर्दी का मौसम आ गया। लोसेर उत्सव शुरू होने में अधिक दिन नहीं है, है न?” दोनों के बीच पसरे हुए सन्नाटे को तोड़ने के लिए दारगे ने कहा।

“हाँ, टोरगा और लोसेर आने ही वाले हैं। मगर इस बार क्या हम लोग लोसेर का आयोजन कर पायेंगे?”

“क्यों? जरूर कर पायेंगे।”

“मेरा दिल कहता है कि हमलोग एक साथ लोसेर में भाग नहीं ले पायेंगे।”

X X X

“क्या तुम सचमुच आने सन्यासिन बनने जा रही हो?”

“नहीं! आने बनने की जगह मैं तुम्हारी पत्नी बनना पसंद करूंगी। मगर हम दोनों की शादी किस्मत में नहीं लिखी हुई है। हम दोनों की शादी करवाने के लिए हमारे माता-पिता लामाओं के पास कुंडली दिखाने के लिए गये थे। गणना कर क्या बताया गया, क्या तुम नहीं जानते?”

X X X

“मेरी किस्मत में शादी नहीं लिखी हुई है।”[26]

रिजोम्बा लामाओं द्वारा की गयी उसकी शादी की भविष्यवाणी दारगे को बताती है, जिसे पाठक उनके वार्तालाप के साथ दृश्य की तरह देख रहा होता है। प्रदर्शित दृश्य पर ठीक ढंग से प्रकाश डालने के लिए उपन्यासकार बस उन परिस्थितियों को बीच-बीच में सामने रखता है, जिन्हें हम दृश्य के माध्यम से प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकते। उपन्यासकार यह भी चाहता है कि पाठक दारगे और रिजोम्बा के मन का हाल भी जाने ताकि उनके संवाद को उसके वास्तविक मर्म के साथ समझ सके।

परिदृश्यात्मक प्रविधि:

कथा रचना में परिदृश्यात्मक प्रविधि को स्पष्ट करते हुए गोपाल राय लिखते हैं- "कथाकार कथा-संसार के परिवेश का, उसके चरित्र के विविध पक्षों का, उनके मन के संकल्प-विकल्प का, उनकी वेशभूषा, रंगरूप और मानसिकता का, सूक्ष्म, सटीक, बिम्बात्मक वर्णन करता है। वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है, जो 'कहने' नहीं, 'प्रस्तुत' करने का बोध पैदा करती है। ऐसे प्रसंगों को मानसिक रूप से ग्रहण करते समय पाठक औपन्यासिक पात्रों के निकट अवस्थित नहीं होता। वह उनसे कुछ दूर, तनिक ऊँची जगह पर, खड़ा होता है, जहाँ से कथाकार की वर्णन की दूरबीन से, वह औपन्यासिक पात्रों के वर्तमान और अतीत को, जो दूर-दूर तक फैला होता है, एक विस्तृत भू-दृश्य के रूप में देखता है। इसे ही पर्सी लब्बाक 'परिदृश्यात्मक प्रविधि' की संज्ञा देते हैं।"[27] थोंगछी जी के प्रस्तुत उपन्यास में भी यह परिदृश्यात्मक प्रविधि देखने को मिलती है। कुछ बातें उपन्यासकार अपनी ओर से नैरेट करता है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के प्रारम्भ में ही दारगे नरबू का परिचय कराते हुए थोंगछी लिखते हैं- "उसका नाम दारगे नरबू है। जन्म के समय उसके पिता द्वारा गाँव के लामा को कुंडली दिखाकर रखा गया उसका असली नाम। मगर उसके वर्तमान के गाँव दिरांगजंग के लोग उसे उस नाम से नहीं जानते।... दिरांगजंग गाँव और समूचे जिले में आजकल वह आउ थांपा, आपा थांपा, आजांग थांपा के नाम से ही जाना जाता है।...यानी किसी के लिए वह बड़ा भाई है, किसी के लिए वह दादाजी है और किसी के लिए मामा है। मगर मूल रूप से वह एक शव काटने वाला आदमी, थांपा है।"[28] उपर्युक्त प्रसंग में कथाकार कथा में स्वयं अनुपस्थित रहता है, केवल पाठक को कथाकार की आवाज सुनाई पड़ती है। जैसा कि गोपाल राय लिखते हैं, पाठक कथाकार की दूरबीन से कथा के दृश्य को देखता है।

प्रस्तुत उपन्यास का बड़ा हिस्सा परिदृश्यात्मक प्रविधि में लिखा गया है। लेकिन विभिन्न प्रविधियों के इस्तेमाल में एक संतुलन भी दिखाई पड़ता है। कोई प्रविधि अपनी अधिकता के कारण ऊब पैदा करने की स्थिति तक नहीं जाती। परिदृश्यात्मक प्रविधि के प्रयोग का एक और उदाहरण देखा जा सकता है। दारगे, उसकी माँ और उसकी पत्नी के बारे में थोंगछी लिखते हैं-

"उसके जीवन के साथ हमेशा दो महिलाएँ गहराई के साथ जुड़ी रही हैं, एक तो उसे जन्म देने वाली माँ दोरछोम, और दूसरी इस समय उसके बगल में नग्न होकर खर्राटे भरती हुई सुकून की गहरी नींद में डूबी हुई उसकी पत्नी गुईसेंगमू। देखने में दोनों के बीच काफी अंतर है, मगर उसकी नजरों में ये दोनों के आचार-व्यवहार, बातचीत के लहजे आदि में कितनी समानता है। उसकी माँ की तरह उसकी पत्नी भी गुस्सैल, चिड़चिड़ी मगर स्नेह भाव से भरपूर है। माँ की तरह वह भी कर्मठ और जवाबदेह है।"[29]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि थोंगछी जी अपने इस उपन्यास के शिल्प-विधान के प्रति बेहद सचेत दिखाई पड़ते हैं। थोंगछी जी के इस उपन्यास का शिल्प सुगठित एवं सुंदर है।

संदर्भ:

---

[1] बाबूराम सक्सेना, सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2010, पृ. 7

[2] वही, पृ. 28

[3] डॉ. श्यामसुंदर दास, साहित्यालोचन, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी, 1988, पृ. 231

[4] डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, 1984, पृ. 4

[5] डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1984, पृ. 126

[6] शांतिस्वरूप गुप्त, उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1980, पृ. 169

[7] नयना, समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, शुबदा प्रकाशन, 2012, पृ. 252

[8] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 85

[9] वही, पृ. 86

[10] वही, पृ. 9

[11] वही, पृ. 14

[12] वही, पृ. 16

[13] वही, पृ. 57

[14] वही, पृ. 74

[15]सत्यप्रकाश बलभद्रप्रसाद मिश्र (.संपा), मानक अँग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन,1971 , पृ 1390 .

[16] कालिका प्रसाद (.संपा), बृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी,1974, पृ. 1357

[17] डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया, ग्रंथ प्रकाशन, 1965, पृ. 232

[18] डॉ. हरदयाल, हिन्दी कहानी : परंपरा और प्रगति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ. 159

[19] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 22-23

[20] वही, पृ. 69

[21] वही, पृ. 92

[22] वही, पृ. 140

[23] वही, पृ. 211-212

[24] वही, पृ. 186

[25] वही, पृ. 13

[26] वही, पृ. 109-110

[27] गोपाल राय, उपन्यास की संरचना, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2012, पृ. 144

[28] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 9

[29] वही, पृ. 38

उपसंहार

उपसंहार

उपन्यास अपने समय और स्थान से सार्थक संवाद करने में सर्वाधिक समर्थ विधा है। साहित्य के केंद्र में मौजूद मनुष्य और उसके घेरे में आनेवाले समाज पर जिन विचारों का प्रभाव पड़ता है, उन विचारों से जूझने की सर्वाधिक क्षमता उपन्यास में है। विचार, समाज, मनुष्य और विचारधाराओं की आपसी टकराहट से उत्पन्न यथार्थ परिदृश्य की रचना भी उपन्यास में ही संभव है।

येशे दोरजी थोंगछी ने उत्तर-पूर्व में स्थित अरुणाचल प्रदेश के मनपा समाज की संस्कृति को अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में बखूबी दर्शाया है। मनपा जनजाति में शव-संस्कार का एक अनोखा रिवाज है। यहाँ के लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में बहा देते हैं। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के केंद्र में मनपा जनजाति की यही अनोखी प्रथा है। इसके अलावा मनपा समाज और संस्कृति के अन्य बहुत सारे पक्ष इस उपन्यास में उभरकर सामने आते हैं। मनपा समाज पर बौद्ध धर्म के प्रभाव और भारत-चीन युद्ध की विभीषिका को भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है। प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध - ' 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन' में 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के विश्लेषण के माध्यम से मनपा समाज और संस्कृति को समझने का प्रयास किया गया है।

अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के समाज और उनकी संस्कृति के विभिन्न पक्षों को थोंगछी जी के लेखन के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के केंद्र में मनपा समाज और संस्कृति है। मनपा समाज एवं संस्कृति शेष भारतीय समाज से कुछ मामलों में बहुत अलग है। इस जनजाति ने अपनी

सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखा है। ये लोग संगीत एवं नृत्य के प्रेमी हैं। इनके यहाँ लोक साहित्य परंपरा से संरक्षित है। मनपा लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। लेकिन इनके यहाँ अन्य धर्मों से कोई भेद-भाव नहीं है। ये समुदाय अनेक त्योहार मनाते हैं, जो इनकी प्रथाओं से जुड़े हुए हैं।

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास मनपा समाज और संस्कृति की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि यह उपन्यास मुख्य रूप से मनपा समाज में मृत्यु के बाद शव-संस्कार के क्रिया कलापों को चित्रित करता है, लेकिन उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से मनपा समाज के अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का भी चित्रण किया है। शव काटने की प्रथा, शव काटने वाले की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अलावा उस समाज में मौजूद धार्मिक आस्था एवं अंधविश्वास, विविध सामाजिक परंपरा आदि को भी उपन्यासकार ने उपन्यास में जगह दी है। प्रत्येक समाज की अपनी खास सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान होती है जो उनके विवाह, परिवार, मृत्यु, धार्मिक त्यौहार, रहन-सहन, खान–पान एवं पहनावे आदि में विन्यस्त होती है। येशे दोरजी थोंगछी प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से इन सारी सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण करते हैं।

उपन्यासकार ने मनपा समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही मान्यताओं का भी चित्रण किया है। यह उपन्यास मुख्य रूप से मनपा समाज में मृत्यु के बाद शव संस्कार में होनेवाली विभिन्न क्रिया कलापों को चित्रित करता है। येशे दोरजी थोंगछी ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से मनपा समाज में परंपरा से चली आ रही शव के टुकड़े करने की प्रथा को बहुत ही बारीकी से प्रस्तुत किया है। मनपा समाज में मृत शरीर को क्रियाकर्म करने से पहले एक सौ आठ टुकड़ों में काटे जाने की प्रथा है। यह क्रिया स्त्री और पुरुष के साथ अलग-अलग तरह से सम्पन्न होती है। आम नागरिक और साधु-सन्यासी के शरीर को भी एक सौ आठ टुकड़ों में काटने का तरीका अलग-अलग है। मनपा समाज में मृत शरीर के

शव-संस्कार का एक बिल्कुल ही अलहदा और अनोखा पारंपरिक नियम है, जिस पर मनपा समाज की गहरी निष्ठा है।

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम के साथ-साथ दारगे नरबू और उसकी पत्नी गुइसेंगमू के गार्हस्थ्य प्रेम का और दारगे नरबू तथा उसकी गूंगी बेटी के बीच वात्सल्य प्रेम का सुंदर चित्रण उपन्यासकार ने किया है। लेकिन सबसे मार्मिक प्रसंग दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम का है।

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में मनपा समाज एवं संस्कृति के साथ-साथ भारत-चीन युद्ध, तिब्बत एवं तवांग की स्थिति, दलाई लामा का भारत आगमन आदि स्थितियों का भी चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने मनपा समाज और संस्कृति के साथ उनके संघर्ष एवं वेदना को भी अस्पष्ट किया है। दलाई लामा का भारत आगमन एक तरफ राजनीतिक समस्या थी तो दूसरी तरफ इससे मनपा समाज की बौद्ध धर्म से नजदीकीयाँ भी बढ़ी। भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तवांग और उसके आस पास के क्षेत्रों में तेजी से बढ़ा। जगह-जगह त्योहार के रूप में दलाई लामा का स्वागत किया गया। भारतीय राजनीतिज्ञों ने उनकी हर तरह से मदद भी की। इस उपन्यास में मनपा समाज और संस्कृति के परिप्रेक्ष में इस ऐतिहासिक मुद्दे को भी बहुत ही बारीकी से उभारा गया है। उपन्यासकार उस पृष्ठभूमि को चित्रित करता है जिसे 1959 में मनपा समाज और उसके आस पास के लोगों ने देखा और महसूस किया था। दलाई लामा के भारत आगमन और उसके पीछे की राजनीतिक परिस्थितियों तथा दलाई लामा के प्रति भारतीयों के स्नेह, आदि को उपन्यासकार ने इस उपन्यास में बड़ी खूबसूरती से पिरोया है।

भारत-चीन सीमा विवाद का दायरा लद्दाख, डोकलाम, नाथुला से होते हुए अरुणाचल के तवांग घाटी तक जाता है। इस इलाके पर चीन की निगाहें हमेशा से रही हैं।

भारत-चीन विवाद के साथ-साथ दलाई लामा का भारत में आना भी भारत-चीन युद्ध का एक कारण है। दलाई लामा का जब भारत में आगमन हुआ तब भी चीन ने इसका काफी विरोध किया था। दलाई लामा को उनके भक्त एक जीवित ईश्वर के तौर पर देखते हैं और चीन उन्हें अलगाववादी खतरा मानता है।

सन 1962 के भारत-चीन युद्ध ने मनपा समाज को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। परिवार, समाज से बिछड़कर लोगों को दर-दर भटकना पड़ा। युद्ध की विभीषिका को झेलना पड़ा। येशे दोरजी थोंगछी अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में मनपा समाज और संस्कृति को कथा का आधार बनाकर 1962 के भारत-चीन युद्ध की विभीषिका को भी चित्रित किया है। उपन्यासकार ने मनपा संस्कृति के बहाने समाज और राजनीति का चित्रण कर एक इतिहास को सुनियोजित और पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास भी किया है।

इस उपन्यास की भाषा इसका सशक्त पक्ष है। इस उपन्यास की एक बड़ी विशेषता यह है कि असमिया से हिन्दी में अनुवाद होने के बाद भी इसकी रचनात्मकता सुरक्षित है। अनुवादक दिनकर कुमार उपन्यास की मूल संवेदना को बचाए रखने में सफल रहे हैं। मनपा समुदाय में प्रचलित शब्दों का प्रयोग उपन्यास के लगभग प्रत्येक पन्ने पर है, जिससे उपन्यास में स्थानीय रंगत जीवंत है। थोंगछी जी ने मनपा समुदाय का सांस्कृतिक वातावरण अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। इनकी भाषा में मनपा समाज के रीति-रिवाज, परम्पराओं, त्योहारों, भोजन आदि के लिए प्रचलित मनपा शब्द शामिल हैं। रचनाकर ने स्वयं इस समुदाय में रहकर इनकी गतिविधियों को करीब से देखा व परखा है, जिसके कारण लेखक मनपा समुदाय के यथार्थ को यथार्थवादी भाषा में अभिव्यक्त कर पाने में सफल नजर आता है।

थोंगछी ने अपने इस उपन्यास में शिल्प का विशेष ध्यान रखा है। येशे दोरजी थोंगछी ने इस उपन्यास में फ्लैशबैक (पूर्वदीप्ति), दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक आदि विभिन्न कथा-प्रविधियों का इसतमाल किया है। इस उपन्यास के कई अध्याय पूर्वदीप्ति शैली में लिखे गए हैं। दारगे नरबू, जो इस उपन्यास का मुख्य पात्र है, बार-बार पुरानी बातों को याद करता है। रिजोम्बा और उपन्यास के अन्य पात्र भी पुरानी बातों को याद करते हैं। इस तरह जब अतीत की घटना फ्लैशबैक शैली में अलग अलग लोगों द्वारा नरेट की जाती है तो नैरेटर के बदलने से अवलोकन बिन्दु भी बदल जाता है। अवलोकन बिन्दु के बदलने से उपन्यास में एक ही समय की कथा के अलग-अलग रूप दिखाई पड़ते हैं। दृश्यात्मक शैली में पाठक उपन्यास में घटनाओं को प्रत्यक्ष घटित होते हुए देखता और पात्रों के वार्तालाप सुनता है, मानो पाठक वहीं घटना के सामने खड़ा होकर ये सब देख रहा हो। प्रस्तुत उपन्यास के कई हिस्से इसी दृश्यात्मक शैली में रचे गए हैं। परिदृश्यात्मक शैली में पाठक को कथाकार की आवाज सुनाई पड़ती है। उपन्यासकार स्वयं कथा को नैरेट करते हुए आगे बढ़ाता है। इस उपन्यास में भी थोंगछी जी उपन्यासकार के रूप में बीच-बीच में उपस्थित होते रहते हैं। कहा जा सकता है कि थोंगछी जी के उपन्यास का शिल्प सुगठित एवं सुंदर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास मनपा समाज और संस्कृति को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यद्यपि इस उपन्यास में मुख्य रूप से मनपा जनजाति के लोगों द्वारा शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटने की प्रथा को दर्शाया गया है, लेकिन इस क्रम में मनपा समाज को उसके पूरे ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में यह उपन्यास सफल रहा है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि मनपा समाज और संस्कृति को करीब से जानने-समझने में यह उपन्यास बहुत मददगार है। संभवतः मनपा समाज पर हिन्दी में उपलब्ध यह अकेला उपन्यास है। अतः इस उपन्यास का अपना ऐतिहासिक महत्व भी है।

परिशिष्ट

येशे दोरजी थोंगछी का साक्षात्कार

प्रश्न 1. आपके प्रिय लेखक और लेखिकाएँ कौन-कौन हैं?

उत्तर : मैं जिनकी भी किताब पढ़ता हूँ, वही मेरे प्रिय लेखक या लेखिका बन जाते हैं।

प्रश्न 2. आप अपने जीवन में कई जगह सरकारी पद पर सुशोभित रहे। आप कहाँ-कहाँ रहे और वहाँ का अनुभव कैसा रहा?

उत्तर: अरुणाचल की लगभग हर अलग-अलग जगह पर मैं रह चुका हूँ। अलग-अलग आदिवासी जनजीवन को देखा है। उनकी अलग-अलग संस्कृति देखी है। मैंने अपनी लघु कहानियों में अरुणाचल की सभी जनजातियों को दर्शाया है।

प्रश्न 3. आप पूर्वोत्तर भारत को लेकर लिख रहे हैं। पूर्वोत्तर और पूर्वोत्तर के लेखन के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: आदिवासी लेखकों ने जो साहित्य सृजन किया है, वह पूरे संसार के साहित्य के लिए एक बहुत नयी चीज है। आदिवासी लेखक बहुत ही अच्छा लिख रहे हैं और पूरे संसार में नाम कमा रहे हैं।

प्रश्न 4. क्या आपने असमिया के अलावा अपनी मातृभाषा में भी साहित्य लेखन किया है? क्या हिन्दी में लेखन की कोई योजना है?

उत्तर: शेरदुकपेन बहुत अल्पसंख्यक समुदाय है। शेरदुकपेन भाषा की कोई लिपि भी नहीं है। शेरदुकपेन भाषा का अपना कोई लिखित साहित्य नहीं है। इसीलिए उसमें लिखने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। शेरदुकपेन में गाना लिखना शुरू हो गया है लेकिन कविता लिखना शुरू नहीं हुआ है। कोई लिखित साहित्य नहीं है।

हिन्दी हम नहीं लिख पाते हैं, क्योंकि मुझे हिन्दी का स्त्रीलिंग, पुलिंग बहुत ही कठिन लगता है। जब मैंने लिखना शुरू किया उस समय अरुणाचल प्रदेश में हिन्दी बहुत कम लोग बोलते थे। असमिया में ही मैं लिख रहा हूँ।

प्रश्न 5. आपके तीन उपन्यासों के हिन्दी अनुवाद हुए हैं? उन अनुवादों से आप कितने संतुष्ट हैं? क्या मूल उपन्यास पूरी तरह ठीक-ठीक अनूदित हो पाया है?

उत्तर: दिनकर कुमार जी ने जो अनुवाद किया है– 'शव काटनेवाला आदमी' और 'मौन होंठ मुखर हृदय' का अच्छा अनुवाद हुआ है। महेंद्र दुबे का अनुवाद ठीक नहीं था। उन्होनें 'शव काटनेवाला आदमी' का भी अनुवाद किया था, पर हमें उसे अस्वीकार करना पड़ा।

प्रश्न 6. आपके उपन्यासों पर बौद्ध धर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसके पीछे का कारण क्या है? आप इससे किस तरह प्रभावित हुए?

उत्तर: हमारा समाज धर्म से प्रभावित होता है। बौद्ध धर्म का मनपा, शेरदूकपेन जनजाति पर बहुत ही प्रभाव पड़ा है। इसलिए जब भी मैं मनपा या शेरदुकपेन जनजाति पर उपन्यास लिखूँ तो बौद्ध धर्म अपने आप आ जायेगा।

प्रश्न 7. आपने ज्यादातर उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के सांस्कृतिक जीवन को लेकर लिखे हैं। क्या पूर्वोत्तर की अन्य जनजातियों के बारे में भी लिखने की कोई योजना है?

उत्तर: मेरे जितने भी उपन्यास होंगे, वे अरुणाचल की जनजातियों के ऊपर ही होंगे। मैंने दूसरी जनजातियों की संस्कृति को नजदीक से नहीं देखा है। उपन्यास लिखने के लिए उस जनजाति को नजदीक से देखना-परखना जरूरी है। उस जनजाति के साथ जुड़ना जरूरी है। अगर मैं दूसरी जनजातियों के बारे में लिखूँगा तो उसे ठीक से दर्शा नहीं पाऊँगा।

प्रश्न 8. अरुणाचली समाज की नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष के बारे में आपके क्या विचार हैं?

उत्तर: पीढ़ी-दर-पीढ़ी का यह संघर्ष मानव इतिहास का अंग है। नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी की सोच बहुत अलग होती है। ये संघर्ष हमेशा से चलते आ रहे हैं।

प्रश्न 9. 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटने का उल्लेख है। एक सौ आठ की इस विशिष्ट संख्या का क्या कारण है? क्या बौद्ध धर्म से इसका कोई संबंध है?

उत्तर: एक सौ आठ की संख्या का बौद्ध धर्म से संबंध है। एक सौ आठ अच्छी संख्या मानी जाती है। एक सौ आठ शुभ माना जाता है। ज्योतिषी नक्षत्र में भी इसका महत्व है।

प्रश्न 10. आपके कुछ यात्रा अनुभव हों तो बताइए? आपके जीवन की सबसे आनंददायी यात्रा कौन-सी रही?

उत्तर: मेरी सभी यात्राएँ आनंददायी रही हैं।

संदर्भ ग्रंथ-सूची

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ:

1) येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

सहायक ग्रंथ:

हिन्दी पुस्तकें

1) अनुज लुगुन, आदिवासी अस्मिता: प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन दिल्ली, 2015

2) अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008

3) अश्विनी कुमार पंकज, प्राथमिक आदिवासी विमर्श, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, 2017

4) आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय धर्म और दर्शन, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 2000

5) आशुतोष गर्ग (अनु.), धर्म से आगे: संपूर्ण संसार के लिए नैतिकता, परम पूज्य दलाई लामा, रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020

6) एल. एन. चक्रवर्ती, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006

7) एस. जी. दवे, आदिवासी समाज का समाजशास्त्र, अनड़ा बुक डिपो, अहमदाबाद, 2007

8) केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी प्रतिरोध, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2016

9) केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी: समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2016

10) गया पाण्डेय, भारतीय जनजाति संस्कृति, कन्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नयी दिल्ली, 2007

11) गुलसन राय मोंगा, पूर्वोत्तर भारत दर्शन और चिंतन, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2004

12) गोपाल राय, उपन्यास की संरचना, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2012

13) गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2017

14) गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 2014

15) चन्द्रमोहन अग्रवाल, भारतीय नारी विविध आयाम, भाग -2, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, उत्तर प्रदेश, 1994

16) डॉ. गणेश दास, स्वांतत्र्योत्तर कहानी में नारी के विविध रूप, अभय प्रकाशन, कानपुर, 1992
17) डॉ. जी. एन. सिंदे (संपा), लोक साहित्य: वैश्विक परिदृश्य, यशवंत महाविद्यालय, महाराष्ट्र, 2016
18) डॉ. नरेंद्र एन. व्यास, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2008
19) डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया, ग्रंथ प्रकाशन, 1965
20) डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, आदिवासी विकास: एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादेमी, भोपाल, 1986
21) डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1984
22) डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, 1984
23) डॉ. राजदेव दुबे, बौद्ध साहित्य का सांस्कृतिक विमर्श, कला एवं धर्म शोध-संस्थान, वाराणसी, 2013
24) डॉ. श्याम सुन्दरदास, साहित्य लोचन, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी, 1988
25) डॉ. शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, 1997
26) डॉ. सुरेन्द्र कुमार मिश्र, भारत के पूर्वोत्तर में उग्रवाद, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
27) डॉ. हरदयाल, हिन्दी कहानी : परंपरा और प्रगति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
28) नयना, समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, शुबदा प्रकाशन, 2012
29) निर्मल कुमार बोस, भारतीय आदिवासी जीवन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, 2013
30) पी. आर. नायडू, भारत के आदिवासी, राधा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 1997
31) पी. आर. नायडू, भारत के आदिवासी: विकास की समस्याएँ, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002
32) प्रो. नन्द किशोर पांडेय (संपा.), मोनपा लोक साहित्य, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 2020
33) बाबुराम सक्सेना, सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2010
34) बिंदु आग्रवाल, हिन्दी उपन्यासों में नारी-चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1938
35) माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1998
36) माता प्रसाद, मनोरम भूमि अरुणाचल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1995

37) येशे दोरजी थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 2017
38) येशे दोरजी थोंगछी, सोनाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
39) रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
40) रमणिका गुप्ता (संपा), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
41) रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2011
42) रामचंद्र गुहा, भारत नेहरू के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2012
43) वीर भारत तलवार, झारखंड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012
44) वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उसका लोक साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2009
45) शांतिस्वरूप गुप्त, उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1980
46) हरीराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नयी दिल्ली, 2014

अंग्रेजी पुस्तकें:

1) Christoph Von Furer-Haimendrof, Highlanders of Arunachal Pradesh: Anthropological Research In North-East India, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1982
2) Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition And Transformation, Lakshi Publishers And Distributors, New Delhi, 2018
3) Dr. M.C. Arunkumar, The Tribes of Arunachal Pradesh, Maxford Books, Delhi, 2012
4) Henry Lalmawizuala, Globalization and Ethnic Identity, Scientific Book Centre, Guwahati, 2014

5) Juri Dutta, Ethnicity In The Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A New Historicist Approach, Adhyayan Publishers &Distributors, New Delhi, 2012

6) Kazuharu Mizuno, Himalayan Nature and Tibetan Buddhist culture in Arunachal Pradesh, India, International Perspectives in Geography AJG Library 6, Springer, Japan, 2015

7) Neeru Nanda, Tawang The Land of Mon, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1982

8) Niranjan Sarkar, Buddhism Among The Monpas And Sherdukpens, Directorate of Research Government of Arunachal Pradesh, Shillong, 1980

9) R.R.P. Sharma, The Sherdukpens, Directorate of Research, Govt. of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1988

10) S. Dutta Choudhury (Editor), Gazetteer of India Arunachal Pradesh: East Kameng West Kameng And Tawang Districts, Government of Arunachal Pradesh, 1996

11) Verrier Elwin, A Philosophy For Nefa, Directorate of Research, Govt. of Arunachal Pradesh, Itanagar, 2014

12) Verrier Elwin, Democracy In Nefa, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1965

13) Verrier Elwin, The Art of The North-East Frontier of India, North-East Frontier Agency, Shillong, 1959

कोश

1) कालिका प्रसाद (संपा.), बृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1974

2) सत्यप्रकाश (संपा.), मानक अँग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1971

पत्रिकाएँ

1) जनसत्ता, 14 सितंबर, 2014

2) पक्षधर पत्रिका, संपादक- विनोद तिवारी, वर्ष-12, सन्युक्तांक: 25-26, जुलाई-दिसंबर, 2018 - जनवरी-जून, 2019

3) पुस्तक वार्ता, भारत भारद्वाज (संपा.), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, मार्च-अप्रैल, 2015

4) मधुमती (पत्रिका), ब्रजरतन जोशी (संपा.), राजस्थान, साहित्य अकादेमी, उदयपुर, नवम्बर, 2020

5) राजभाषा ज्योति (पत्रिका), अंक- 38, अक्टूबर, 2020 - मार्च, 2021

6) Indian Journal of Traditional knowledge, Vol. b 6(1), January, 2007

7) Int. J. Adv. Res 7 (7), July 2019

बायोडाटा

1. नाम	:	बरबी ललबियाकसाङी साइलो
2. पिता का नाम	:	स्व. श्री ललसाङा साइलो
3. माता का नाम	:	स्व. श्रीमती नुरी साइलो
4. पता	:	बुंगकोन वेंगथार, आइजोल, मिजोरम- 796001
5. जन्मतिथि	:	21.07.1992
6. शैक्षणिक योग्यता	:	क) दसवीं (2010) – तृतीय श्रेणी ख) बारहवीं (2012) – द्वितीय श्रेणी ग) स्नातक (2015) – द्वितीय श्रेणी घ) बी. एड. (2018) – प्रथम श्रेणी ङ) एम.ए.- हिन्दी (2018) – प्रथम श्रेणी
7. मोबाइल	:	9862357954
8. ईमेल	:	barbiesailo21@gmail.com
9. भाषा ज्ञान	:	हिन्दी, अँग्रेजी, मिजो

10 . संगोष्ठियों में पत्र वाचन:

क्रम सं.	शीर्षक	आयोजक	तिथि
1	'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में मनपा समाज और संस्कृति	राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA), मिजोरम हिन्दी प्रशिक्षण महाविद्यालय, आइजोल और हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल	29 नवम्बर, 2019
2	साहित्येतिहास लेखन की विभिन्न दृष्टियाँ	हिन्दी विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल	12 जून, 2020

(बरबी ललबियाकसाङी साइलो)

अनुसंधित्सु का विवरण

नाम	:	बरबी ललबियाकसाङी साइलो
उपाधि	:	एम.फिल.
विभाग	:	हिन्दी
लघु शोध-प्रबंध का शीर्षक	:	**'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन**
प्रवेश तिथि	:	25.07.2019
शोध प्रस्ताव की संस्तुति		
1) विभागीय शोध समिति की तिथि	:	27.04.2020
2) बी.ओ.एस. की तिथि	:	19.05.2020
3) स्कूल बोर्ड की तिथि	:	29.05.2020
मिजोरम विश्वविद्यालय पंजीयन संख्या	:	1904973
एम.फिल. पंजीयन संख्या	:	MZU/M.Phil./622 of 29.05.2020
लघु शोध-प्रबंध जमा करने की तिथि	:	26.10.2021
अवधि विस्तार (एक्सटेंशन)	:	31.07.2021 तक (पत्रांक: **16-2/MZU (Acad)/ 20/394-399; दिनांक: 11.02.2021**) तथा 31.12.2021 तक (पत्रांक: **17-1/MZU (Acad)/ 20/14; दिनांक: 01.04.2021**)

(प्रो. सुशील कुमार शर्मा)
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल

‘शव काटनेवाला आदमी’ उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

‘SHAV KATNEWALA AADAMI’ UPANYAS KA
AALOCHANATMAK ADHYAYAN

[मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल के हिन्दी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध का सारांश (Abstract)]

बरबी ललबियाकसाङी साइलो

BARBIE LALBIAKSANGI SAILO

MZU Regd. No. 1904973

M.Phil. Regd. No. MZU/M.Phil./622 of 29.05.2020

हिन्दी विभाग

शिक्षा एवं मानविकी संकाय

DEPARTMENT OF HINDI

SCHOOL OF EDUCATION AND HUMANITIES

अक्टूबर, 2021

OCTOBER, 2021

‘शव काटनेवाला आदमी’ उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

‘SHAV KATNEWALA AADAMI’ UPANYAS KA
AALOCHANATMAK ADHYAYAN

प्रस्तुतकर्ता
बरबी ललबियाकसाङी साइलो
हिन्दी विभाग
BARBIE LALBIAKSANGI SAILO
Department of Hindi

शोध-निर्देशक
डॉ. अमिष वर्मा
हिन्दी विभाग
Dr. Amish Verma
Department of Hindi

मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल के शिक्षा एवं मानविकी संकाय के अंतर्गत
हिन्दी विषय में मास्टर ऑफ फिलॉसफी (एम.फिल.) की उपाधि के लिए
अपेक्षित आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध का सारांश (Abstract)

Submitted in partial fulfillment of the requirement of the degree of Master of Philosophy in Hindi of Mizoram University, Aizawl.

अध्याय योजना

'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन

भूमिका

अध्याय-1
येशे दोरजी थोंगछी: जीवन और साहित्य
1.1 येशे दोरजी थोंगछी का जीवन
1.2 येशे दोरजी थोंगछी की साहित्य-यात्रा

अध्याय- 2
मनपा समाज और संस्कृति का परिचय

अध्याय- 3
शव काटनेवाला आदमी : संवेदना के विविध आयाम
1.1 मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति
1.2 शव काटने की प्रथा: उपन्यास का केंद्रीय विषय
1.3 उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप
1.4 दलाई लामा का भारत आगमन
1.5 भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज

अध्याय- 4
'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का शिल्प
1.1 भाषा
1.2 कथा शिल्प

उपसंहार

परिशिष्ट
येशे दोरजी थोंगछी का साक्षात्कार

संदर्भ ग्रंथ सूची

लघु शोध-प्रबंध सार

उपन्यास अपने समय और स्थान से सार्थक संवाद करने में सर्वाधिक समर्थ विधा है। साहित्य के केंद्र में मौजूद मनुष्य और उसके घेरे में आने वाले समाज पर जिन विचारों का प्रभाव पड़ता है उन विचारों से जूझने की सर्वाधिक क्षमता उपन्यास में है। विचार, समाज, मनुष्य और विचारधाराओं की आपसी टकराहट से उत्पन्न यथार्थ परिदृश्य की रचना भी उपन्यास में ही संभव है।

येशे दोरजी थोंगछी ने उत्तर-पूर्व में स्थित अरुणाचल प्रदेश के मनपा समाज की संस्कृति को अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में बखूबी दर्शाया है। मनपा जनजाति में शव-संस्कार का एक अनोखा रिवाज है। यहाँ के लोग मृतकों के शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में बहा देते हैं। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के केंद्र में मनपा जनजाति की यही अनोखी प्रथा है। इसके अलावा मनपा समाज और संस्कृति के अन्य बहुत सारे पक्ष इस उपन्यास में उभरकर सामने आते हैं। मनपा समाज पर बौद्ध धर्म के प्रभाव और भारत-चीन युद्ध की विभीषिका को भी इस उपन्यास में देखा जा सकता है। प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध- ''शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का आलोचनात्मक अध्ययन' में 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के विश्लेषण के माध्यम से मनपा समाज और संस्कृति को समझने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन की सुविधा हेतु सम्पूर्ण लघु शोध प्रबंध को चार अध्यायों मे विभाजित किया गया है। लघु शोध प्रबंध का प्रथम अध्याय **'येशे दोरजी थोंगछी : जीवन और साहित्य'** है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम उप- अध्याय **'येशे दोरजी थोंगछी का जीवन'** है। इस उप-अध्याय में थोंगछी जी के व्यक्तित्व का परिचय

दिया गया है। येशे दोरजी थोंगछी का जन्म 13 जून, 1952 को अरुणाचल प्रदेश के वेस्ट कामेंग जिले में स्थित 'जिगाँव' नामक गाँव में हुआ। उनकी माता का नाम स्व. रिनचिन चोजोम थोंगछी एवं पिता का नाम स्व. पूनचू थोंगछी था। येशे दोरजी थोंगछी अरुणाचल की 'शेरदुकपेन' जनजाति से ताल्लुक रखते हैं। उनकी पत्नी श्रीमती सोनामती थोंगछी न्यीशी जनजाति की महिला हैं। इनके तीन बच्चे हैं, जिनमें दो लड़के और एक लड़की है। येशे दोरजी थोंगछी की प्रारम्भिक शिक्षा उनके गाँव के गवर्नमेंट प्राइमरी स्कूल में हुई। तत्पश्चात उन्होंने गवर्नमेंट हायर सेकेंडरी स्कूल, बोमडिला से इंटरमीडिएट, कॉटन कॉलेज गुवाहाटी से स्नातक एवं गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी से स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की।

येशे दोरजी थोंगछी विभिन्न कार्यलयों एवं प्रशासनिक पदों पर कार्य कर चुके हैं। अरुणाचल प्रदेश के सिविल सेवा अधिकारी के रूप में उन्होंने अपने करियर की शुरुआत की और फिर 1992 में उन्हें भारतीय प्रशासनिक सेवा में प्रोन्नत कर दिया गया। उन्होंने पाँच जिलों (तवांग, लोअर सुबनसिरी, चांगलांग, लोहित और पूर्वी कामेंग) में डी.सी.(डिप्टी कमिश्नर) के रूप में लगातार साढ़े बारह वर्षों तक कार्य किया। पर्यटन, शहरी विकास मंत्रालय, परिवहन विभाग एवं नागरिक आपूर्ति जैसे तमाम महत्वपूर्ण विभागों में सचिव के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के तहत गठित अरुणाचल प्रदेश सूचना आयोग के मुख्य सूचना आयुक्त के रूप में भी इन्होंने अपनी सेवा दी है।

थोंगछी जी कई सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और पर्यावरणीय गतिविधियों के साथ जुड़े रहे हैं। वे अरुणाचल के 'इंडिजीनस फेथ ऐंड कल्चरल सोसाइटी' नामक संस्था के अध्यक्ष भी रहे हैं। मूलनिवासियों की आस्था और धर्म को बढ़ावा देने तथा धर्मांतरण के

खिलाफ लड़ने के लिए विभिन्न जनजातियों के बीच अरुणाचल प्रदेश और असम में इस संस्था की 400 से अधिक शाखाएँ हैं। इन्होंने अरुणाचल प्रदेश के पहले साहित्यिक समाज- 'अरुणाचल प्रदेश लिटरेरी सोसाइटी' का गठन किया जो राज्य की साहित्यिक गतिविधियों के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ राज्य के युवा और वरिष्ठ लेखकों को एक मंच प्रदान करने का काम करता है। यह संस्था साहित्य अकादमी एवं अन्य साहित्यिक निकायों के सहयोग से साहित्यिक कार्यशाला, संगोष्ठी आदि का आयोजन भी करती है। येशे दोरजी थोंगछी 2006 से उक्त संस्था के अध्यक्ष पद पर आसीन हैं। इसके अलावा विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों से सक्रिय रूप में जुड़े रहने के साथ-साथ कई सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं के सलाहकार भी हैं।

येशे दोरजी थोंगछी को उनके साहित्यिक लेखन एवं अन्य सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए हैं, 1971 में 'हरिहर चौधरी पुरस्कार', 1999 में 'फूलचंद खांदेवाल संगति साहित्य पुरस्कार', 2001 में 'कलागुरु विष्णु राभा पुरस्कार', 2005 में 'साहित्य अकादेमी पुरस्कार' और 'भाषा भारती पुरस्कार', 2010 में 'वासुदेव जलान साहित्य पुरस्कार', 2012 में 'विशेष उपलब्धि पुरस्कार (साहित्य), 2014 में 'डॉ. मैदुल इस्लाम बोरा साहित्य पुरस्कार', 2015 में 'असम-अरुणाचल भूपेन हजारिका सम्मान-पुरस्कार', 2017 में 'जातीय विद्यालय साहित्य पुरस्कार', 'डॉ. भूपेन हजारिका राष्ट्रीय पुरस्कार', 'सादिन-प्रतिदिन गोष्ठी विशेष उपलब्धि (साहित्य और पत्रकारिता) पुरस्कार' और 'असम घाटी साहित्य पुरस्कार', 2018 में 'रंगबंगतेरांग सम्मान पुरस्कार', 2020 में 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी सम्मान', 'सुकाफा पुरस्कार' और 'पदमश्री' आदि से सम्मानित किया गया।

द्वितीय उप-अध्याय **'येशे दोरजी थोंगछी की साहित्य-यात्रा'** है। इस उप-अध्याय के अंतर्गत थोंगछी जी की साहित्य-यात्रा का वर्णन किया गया है। येशे दोरजी थोंगछी ने अपना सम्पूर्ण लेखन असमिया भाषा में किया है। उनके कुल सात उपन्यास प्रकाशित हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है –'सोनाम'(मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद भी 'सोनाम' नाम से प्रकाशित), 'लिंगझिक' (असमिया में), 'मौन ओंठ मुखर हृदय' (मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद 'मौन होंठ मुखर हृदय' नाम से प्रकाशित), 'शव कटा मानुह (मूल असमिया में; हिन्दी अनुवाद 'शव काटनेवाला आदमी' नाम से प्रकाशित)', 'विष कन्यार देशोत' (असमिया में), 'मिसिंग' (असमिया में), 'मई आकोउ जनम लम' (असमिया में)। **'सोनाम'** येशे दोरजी थोंगछी का पहला उपन्यास है, जो 1981 में 'सोनाम' नाम से असमिया में और 2009 में हिन्दी में अनूदित होकर 'सोनाम' नाम से वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ। उनका पहला उपन्यास 'सोनाम' ब्रोकपा जनजाति (मनपा जनजाति का ही एक वर्ग) और उस समाज के एक खास रिवाज को केंद्र में रखकर लिखा गया है। ब्रोकपा परिवार में एक महिला को एक से अधिक पुरुषों से शादी करने की सामाजिक अनुमति है। इस अनोखे रिवाज को मोनपा समाज में 'खोरदेपका' कहा जाता है। इस अनोखे रिवाज के कारण मोनपा समाज में प्रभावित होते स्त्री-पुरुष संबंध तथा अंतत: स्त्री की पीड़ा और उसके संघर्ष को इस उपन्यास के माध्यम से समझा जा सकता है। **'लिंगझिक'** येशे दोरजी थोंगछी का दूसरा उपन्यास है जो 1983 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास मूल रूप से शेरदुकपेन जनजाति के एक ऐसे पुराने रिवाज को केंद्र में रखकर लिखा गया है जो उपन्यास प्रकाशन के समय तक अप्रासंगिक हो चुका था। उपन्यास की विषय-वस्तु शेरदुकपेन समुदाय के कुछ प्राचीन पारंपरिक सामाजिक रिवाजों पर पुनर्विचार की माँग करती है। यह उपन्यास हमें पारंपरिक शेरदुकपेन विवाह प्रणाली से भी परिचित कराता है। येशे दोरजी थोंगछी का

'साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत उपन्यास **'मौन ओंठ मुखर हृदय'** पहली बार 1991 में असमिया आवधिक प्रांतीय शृंखला में प्रकाशित हुआ था। बाद में इसका हिन्दी अनुवाद **'मौन होंठ मुखर हृदय'** नाम से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास एक गैर परंपरागत अंत के साथ प्रेम के पारंपरिक विषय से संबंधित है, जहाँ प्रेमी सामाजिक रूप से एक होने के लिए सामाजिक बाधाओं को दूर नहीं कर पाते। येशे दोरजी थोंगछी का उपन्यास **'शव काटनेवाला आदमी'** 2004 में 'शव कटा मानुह' नाम से असमिया में और 2014 में हिन्दी में अनूदित होकर 'शव काटनेवाला आदमी' नाम से प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास अरुणाचल प्रदेश की मनपा जनजाति से संबंधित है। उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण विषय मनपा जनजाति में शव काटने की प्रथा है। मनपा समुदाय में मृत शरीर को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर और फिर इन टुकड़ों को नदी में फेंककर शव संस्कार करने की प्रणाली है। **'विष कन्यार देशत'** (असमिया) उपन्यास का प्रकाशन 2006 में हुआ। यह उपन्यास एक वास्तविक घटना पर आधारित है। उपन्यास 'विष कन्यार देशत' अरुणाचल प्रदेश की 'पानचेनपा' (मनपा का एक वर्ग) जनजाति के बीच प्रचलित एक लोक विश्वास पर आधारित है। **'मिसिंग'** (असमिया) उपन्यास 2008 में प्रकाशित हुआ। भूत, आत्मा, पिशाच, ड्रैकुला आदि जैसी अलौकिक सत्ताओं को लेकर ढेरों मान्यताएँ आदिवासी समाज में प्रचलित होती हैं। 'मिसिंग' उपन्यास के केंद्र में भी अरुणाचल प्रदेश की शेरदुकपेन जनजाति के बीच इन अलौकिक सत्ताओं के अस्तित्व के बारे में प्रचलित लोक विश्वास है। **'मई आकोउ जनम लम'** (असमिया) उपन्यास का प्रकाशन 2011 में हुआ। येशे दोरजी थोंगछी के इस उपन्यास का कथा-केंद्र तिब्बत है और यह लामा और रिन्पोछे के पुनर्जन्म के बौद्ध विश्वास पर आधारित है। येशे दोरजी थोंगछी के तीन कहानी संग्रह – 'पापोर पुखुरी', 'अन्य एखन प्रतियोगिता' तथा 'बाँह फुलर गोंध' प्रकाशित हैं। ये तीनों ही संग्रह असमिया

में हैं। इनमें से किसी का हिन्दी अनुवाद अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। थोंगछी जी की कहानियों में भी अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समाज, संस्कृति और लोक मान्यताओं का सुंदर चित्रण मिलता है। 'पापोर पुखुरी' (पाप का पोखर) नामक कहानी प्लेग की बीमारी के पीछे की आदिवासी लोक मान्यता को स्पष्ट करती है। 'बाँह फुलर गोन्ध' (बाँस फूल की गंध) कहानी भी एक लोक मान्यता पर आधारित है।

येशे दोरजी थोंगछी असमिया के मशहूर कथाकार हैं, जिन्होंने अत्यंत महत्वपूर्ण लेखन किया है। उनके लेखन का महत्व इस बात से भी समझा जा सकता है कि उनकी कृतियों का अँग्रेजी, हिन्दी, बोडो, बांग्ला और रूसी भाषा में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में अब तक उनके तीन उपन्यास अनूदित हो चुके हैं- 'शव काटनेवाला आदमी', 'मौन होंठ मुखर हृदय','सोनाम'। उनके उपन्यास 'सोनाम' पर फिल्म भी बन चुकी है, जिसे 2005 में राष्ट्रपति की ओर से रजत पदक प्राप्त हुआ है। निश्चित रूप से अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के समाज और उनकी संस्कृति के विभिन्न पक्षों को थोंगछी जी के लेखन के माध्यम से बेहतर ढंग से समझा जा सकता है।

द्वितीय अध्याय **'मनपा समाज और संस्कृति का परिचय'** है। इस अध्याय में मनपा समाज और संस्कृति की सामाजिक पृष्ठभूमि एवं उनके सांस्कृतिक परिदृश्य को रेखांकित किया गया है। हम कह सकते हैं कि मनपा समाज एवं संस्कृति अन्य भारतीय समाज से कुछ मामलों में अलग है। इस जनजाति ने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संजोकर रखा है। ये लोग संगीत एवं नृत्य के प्रेमी हैं। इनके यहाँ लोक साहित्य परंपरा से संरक्षित है। मनपा लोग बौद्ध धर्म को मानने वाले हैं। लेकिन इनके यहाँ अन्य धर्मों से कोई भेद-भाव नहीं है। ये समुदाय अनेक त्योहार मनाते हैं, जो इनकी प्रथाओं से जुड़े हुए हैं। मनपा समुदाय को मुख्य रूप से तीन समूहों में बाँट कर देखा जाता है – खालेगथांग (कलकटांग) मनपा,

दिरांग मनपा, तवांग मनपा। आर्थिक रूप से यह समाज उतना समृद्ध नहीं है। यह अपने जीवन-यापन के लिए कृषि एवं पशुपालन पर निर्भर है। साथ-ही-साथ यह समाज अपनी कलात्मक कृतियों के लिए भी जाना जाता है। मनपा समाज में ममेरे भाई और बुआ की बेटी के बीच शादी का प्रावधान है। प्रेम विवाह की परंपरा भी इस समाज में है। आधुनिक परिवेश में भी मनपा समाज अपनी भाषा एवं संस्कृति को लेकर जागरूक है। धार्मिक अवसरों एवं त्योहारों पर मनपा लोग गोम्पा में सामाजिक कार्यों का निर्वहन करते हैं। मनपा समाज में देव-दानव एवं मानव संस्कृतियों की अभिव्यक्ति दिखाई पड़ती है।

तृतीय अध्याय **'शव काटनेवाला आदमी: संवेदना के विविध आयाम'** है। इस अध्याय को पाँच उप-अध्यायों में बाँट कर उनका विवेचन किया गया है। प्रथम उप-अध्याय **'मनपा समाज और संस्कृति की औपन्यासिक अभिव्यक्ति'** है। इस उप-अध्याय में मनपा समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन की औपन्यासिक अभिव्यक्ति को रेखांकित किया गया है। यह उपन्यास मनपा समाज और संस्कृति की मार्मिक अभिव्यक्ति करता है। यद्यपि यह उपन्यास मुख्य रूप से मनपा समाज में मृत्यु के बाद शव-संस्कार के क्रिया कलापों को चित्रित करता है, लेकिन उपन्यासकार ने इस उपन्यास के माध्यम से मनपा समाज के अनेक सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं का भी चित्रण किया है। शव काटने की प्रथा, शव काटने वाले की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति के अलावा उस समाज में मौजूद धार्मिक आस्था एवं अंधविश्वास, विविध सामाजिक परंपरा आदि को भी उपन्यासकार ने उपन्यास में जगह दी है। प्रत्येक समाज की अपनी खास सामाजिक संरचना और सांस्कृतिक पहचान होती है जो उनके विवाह, परिवार, मृत्यु, धार्मिक त्यौहार, रहन-सहन, खान –पान एवं पहनावे आदि में विन्यस्त होती है। येशे दोरजी थोंगछी प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से इन सारी सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितियों का चित्रण करते हैं।

द्वितीय उप-अध्याय **'शव काटने की प्रथा: उपन्यास का केंद्रीय विषय'** है। इस उप-अध्याय में उपन्यास में अभिव्यक्त मनपा समाज के मृत्यु संस्कार, शव काटने की प्रथा आदि का विश्लेषण किया गया है। मनपा समाज में मृत शरीर को क्रियाकर्म करने से पहले एक सौ आठ टुकड़ों में काटे जाने की प्रथा है। यह क्रिया स्त्री और पुरुष के साथ अलग-अलग तरह से सम्पन्न होती है। आम नागरिक और साधु-सन्यासी के शरीर को भी एक सौ आठ टुकड़ों में काटने का तरीका अलग-अलग है। उपन्यास में दारगे नरबू को उसका फूफा लेकी शव काटने का तरीका सिखाते हुए कहता है- "आओ जव, इस पैर को पकड़ो। बायाँ पैर नहीं, दायाँ पैर। मर्द होने पर पहले दायाँ पैर, दायें हाथ से काटना शुरू करना चाहिए, औरत होने पर बायीं तरफ से शुरुआत करनी चाहिए। सिर के साथ एक सौ आठ टुकड़े करने चाहिए। अच्छी तरह देखना शरीर के किन अंगों को काटकर एक सौ आठ टुकड़े बनाए जाते हैं। साथ-साथ गिनती करना।"[1] शव काटने की इस प्रथा में साधु-सन्यासी का शव आम आदमी के शव से बिल्कुल भिन्न तरीकों से काटा एवं विसर्जित किया जाता है। जहाँ आम आदमी के शव को काटकर नदी में विसर्जित किया जाता है, वहीं साधु-सन्यासी के शव को काटने के बाद बाकी शरीर के अंगों को तो नदी में बहा दिया जाता है, लेकिन सिर को सुरक्षित रख लिया जाता है। उपन्यास में इसका ज़िक्र है- "और अगर सिर किसी बड़े लामा या संन्यासिन का हो तो उसे सुरक्षित रखना पड़ता है। उसे अच्छी तरह कपड़े में लपेटकर जमीन के नीचे गाड़ना पड़ता है और एक-दो साल बाद शुभ तिथि देखकर पूजा-पाठ कर खोपड़ी को बाहर निकाल कर उसके ऊपरी हिस्से को पूजा के समय मदिरा रखने के लिए कापलिंग बनाना पड़ता है।"[2]

प्रस्तुत उपन्यास में शव काटने की प्रथा को बहुत ही विस्तार से चित्रित करते हुए उपन्यासकार यह भी बताता है कि शव काटने की प्रक्रिया शुरू करने से पूर्व मंत्रोच्चारण भी किया जाता है। मंत्रोच्चारण के उपरांत ही शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटा जाता है।

उपन्यास के बिल्कुल आखिर में आने सांगे के मृत शरीर को काटने से पहले दारगे नरबू मंत्रोच्चार करता है- " 'ओम मने पेमे हुम' मंत्र बुदबुदाते हुए उसने आने सांगे नोरलजम की गरदन पर वार किया।"[3]

शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर ही नदी में विसर्जित किया जाता है। 'एक सौ आठ' की इस विशेष संख्या का संबंध बौद्ध धर्म से माना जाता है। येशे दोरजी थोंगछी अपने साक्षात्कार (लघु शोध-प्रबंध के परिशिष्ट में संलग्न) में भी यह स्पष्ट करते हैं। प्रत्येक मनपा व्यक्ति चाहता है कि मृत्यु के बाद उसके शरीर को इसी तरह से एक सौ आठ टुकड़ों में काटकर नदी में विसर्जित किया जाए। थोंगछी अपने उपन्यास में एक प्रसंग में इस बात का उल्लेख करते हैं- "इसलिए मनपा जनजाति के लोगों को अपने स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर मरने से काफी कठिनाई होती थी।...प्रत्येक मनपा व्यक्ति की कामना होती है कि मरने के बाद उसकी अन्त्येष्टि जमीन में दफनाकर या जलाकर न की जाए। उसकी लाश काटकर नदी में बहा दी जाए।"[4] हम देख सकते हैं कि मनपा समाज में मृत शरीर के शव-संस्कार का एक बिल्कुल ही अलहदा और अनोखा पारंपरिक नियम है, जिस पर मनपा समाज की गहरी निष्ठा है।

तृतीय उप-अध्याय **'उपन्यास में अभिव्यक्त प्रेम का स्वरूप'** है। इस उप-अध्याय के अंतर्गत उपन्यास में निहित प्रेम संबंधी मूल्यों तथा प्रेम के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है। 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास में दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम के साथ-साथ दारगे नरबू और उसकी पत्नी गुइसेंगमू के गार्हस्थ्य प्रेम का और दारगे नरबू तथा उसकी गूंगी बेटी के बीच वात्सल्य प्रेम का सुंदर चित्रण उपन्यासकार ने किया गया है। लेकिन सबसे मार्मिक प्रसंग तो दारगे नरबू और रिजोम्बा के अमर प्रेम का ही बन पड़ा है।

चतुर्थ उप-अध्याय **'दलाई लामा का भारत आगमन'** है। इस उप-अध्याय में उपन्यास में अभिव्यक्त दलाई लामा के तिब्बत छोड़कर भारत आने की घटना और उससे मनपा समाज के संबंध का विश्लेषण किया गया है। जब 1959 में चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया और वहाँ का सारा प्रशासन अपने हाथ में ले लिया, तब इसका फायदा उठाते हुए वह तिब्बत के लोगों पर अत्याचार करने लगा। तब दलाई लामा ने बातचीत कर मध्यमार्ग निकालने के लिए चीन को वार्ता दल भेजा लेकिन उसका कोई परिणाम नहीं निकला। चीन सरकार द्वारा दलाई लामा को बंदी बनाने की कोशिश की जा रही थी, जिसकी वजह से उनके जीवन पर खतरा मंडराने लगा। आखिरकार उन्हें तिब्बत छोड़ना पड़ा। तिब्बत छोड़ने के बाद उन्होंने भारत में शरण लिया। रामचंद्र गुहा के अनुसार - "मार्च, 1959 के आखरी दिन दलाई लामा मैकमोहन लाइन पार कर भारत आ गए। कई बरसों से तिब्बत का वो दैवीय शासक ल्हासा के पोटाला महल में बड़े असहज रूप से अपनी गद्दी पर बैठा रहा था, जबकि चीन उसके देश पर अपना शिकंजा कसता गया।...सन 1958 में पूर्वी तिब्बत के खाम्पाओं ने इन आक्रांताओं के खिलाफ सशत्र विद्रोह शुरू किया। शुरुआती कुछ सफलता के बाद चीनियों ने इस विद्रोह का दमन कर दिया। अब चीनियों के बदले की कारवाई से खुद दलाई लामा खतरे में पड़ गए। जब नई दिल्ली ने उन्हें राजनीतिक शरण देना मंजूर कर लिया तो वे एक रात अंधेरे का फायदा उठाकर वहाँ से अपने कुछ विश्वस्त साथियों के साथ भारत पलायन कर गए। ...दलाई लामा ने भारत में अपनी पहली रात तवांग के बौद्ध मठ में बिताई। उसके बाद वे मैदान में बसे आसाम के शहर तेजपुर चले आए जहां भारतीय अधिकारियों ने उनका 'हालचाल' लिया।"[5]

दलाई लामा का भारत आगमन एक तरफ राजनीतिक समस्या थी तो दूसरी तरफ इससे मनपा समाज में बौद्ध धर्म से नजदीकीयाँ भी बढ़ीं। भारत में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तवांग और उसके आस पास के क्षेत्रों में तेजी से बढ़ा। जगह-जगह त्योहार के रूप में उनका स्वागत किया गया। भारतीय राजनीतिज्ञों ने उनकी हर तरह से मदद भी की। इस

उपन्यास में मनपा समाज और संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में इस ऐतिहासिक मुद्दे को भी बहुत ही बारीकी से उभारा गया है। उपन्यासकार उस पृष्ठभूमि को चित्रित करता है, जिसे 1959 में मनपा समाज और उसके आस पास के लोगों ने देखा और महसूस किया था। दलाई लामा का भारत आगमन और उसके पीछे की राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा दलाई लामा के प्रति भारतीयों के स्नेह आदि को उपन्यासकार ने इस उपन्यास में बड़ी खूबसूरती से पिरोया है। उपन्यासकार के शब्दों में- "तिब्बत के जन आन्दोलन का फायदा उठाते हुए चीन ने तिब्बत में तबाही का सिलसिला शुरू कर दिया था। ल्हासा में मौजूद चीन के सेनाध्यक्ष ने इस अवसर का फायदा उठाते हुए धर्मगुरु दलाई लामा को बंदी बनाने की साजिश रची। चीन की सेना से बचाने के लिए तिब्बती परिषद के सदस्यों ने दलाई लामा को ल्हासा से निकालने के लिए योजना तैयार की और एक दिन चुपचाप दलाई लामा अपने अनुयायियों के साथ भारत की तरफ रवाना हो गये।"[6] उपन्यासकार आगे बताता है- "निश्चित समय पर दलाई लामा ने भारत की भूमि पर पदार्पण किया और सुरवा सांबा में तवांग के एसिस्टेंट पोलिटिकल ऑफिसर मि. टी. के. मूर्ति ने भारत सरकार की तरफ से उनका स्वागत किया।"[7] मनपा समाज में दलाई लामा को लेकर जो आत्म सम्मान था या जो समर्पण था उसे देखकर यही लगता है कि दलाई लामा के लिए इस समाज ने युद्ध की विभीषिका को बहुत ही आसानी से झेल लिया। इसमें पुरुष के साथ-साथ महिलाओं ने भी अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

पंचम उप-अध्याय **'भारत-चीन युद्ध और मनपा समाज'** है। इस उप-अध्याय में उपन्यास के आधार पर भारत-चीन की लड़ाई एवं उससे मनपा समाज पर पड़ने वाले प्रभाव को रेखांकित किया गया है। भारत-चीन युद्ध जो भारत-चीन सीमा विवाद के रूप में भी जाना जाता है, 1962 में हुआ था। भारत और चीन के बीच सीमा विवाद को लेकर तमाम तरह की चर्चा चली। रामचंद्र गुहा के अनुसार- "जुलाई, 1962 के तीसरे सप्ताह में लद्दाख के गलवान घाटी में भारतीय और चीनी सैनिकों के बीच झड़पें हुई। उसके बाद

सितंबर की शुरुआत में तवांग से 60 मील पश्चिम धोला/थागला पहाड़ियों के ऊपर नामका छू नदी घाटी से भी संघर्ष की खबरें आई। यह वो इलाका था जहाँ भारत, तिब्बत और भूटान की सीमा मिलती थी। यहाँ मैकमोहन रेखा की सही स्थिति विवादित थी। भारतीयों ने दावा किया कि पहाड़ी उस रेखा से दक्षिण में स्थित है जबकि चीनियों का कहना था कि यह उनके इलाके में है।"[8] सीमा को लेकर चल रहे लंबे विवाद के बाद भारत और चीन के बीच युद्ध की शुरुआत 1962 में हुई। भारत-चीन युद्ध के चलते तवांग क्षेत्र के निवासियों को बहुत ही कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करना पड़ा। उनकी स्थिति को देखते हुए भारत सरकार ने उसमें सुधार लाने का हर संभव प्रयास किया। चिकित्सा, शिक्षा, कृषि और कुटीर उद्योग आदि विभागों में तवांग में कार्य शुरू किया गया। चीन के आक्रमण से तबाह हुए तवांग की स्थिति को प्रस्तुत करते हुए एल.एन.चक्रवर्ती कहते हैं कि- "चीन के आक्रमण से, तवांग के विकास कार्यों में बहुत बड़ी बाधा पहुँची थी। वहाँ के निवासियों को इस आक्रमण से बहुत बड़े कष्टों का सामना करना पड़ा था। कुछ ने तो अपना घर छोड़कर, भागकर असम में शरण ली थी। सड़कें, मकान और पुल नष्ट हो गए थे। चिकित्सालय और विद्यालय बंद कर दिए गए थे। वहाँ चल रहे राष्ट्र निर्माण के कार्यालय अचानक ठप पड़ गए थे। चीनी सैनिकों के वापस जाने के बाद घर छोड़कर भागे हुए लोगों को वापस उनके गाँवों और घरों में भेजा गया तथा एक बार पुन: विकास कार्यों में गति लाने का प्रयास किया गया।"[9] दलाई लामा के तिब्बत से तवांग आने के बाद की स्थिति बहुत ही भयानक हो गई थी। दलाई लामा के आने से चीन बौखला गया था। चीन की सेना ने जब तिब्बत पर कब्जा किया तब बौद्ध धर्म के लोगों पर कई अत्याचार किए और बहुत लोगों को अपनी जान गंवानी पड़ी। चीन उस समय दलाई लामा की भी हत्या कराना चाहता था और इसी वजह से वर्ष 1959 में दलाई लामा को तिब्बत छोड़कर भारत आना पड़ा। भारत-चीन सीमा विवाद के चलते जब दलाई लामा भारत आए तब भारत ने उनका स्वागत किया। भारत-चीन विवाद के साथ-साथ दलाई लामा का भारत में आना भी भारत-चीन युद्ध का एक कारण है। रामचंद्र

गुहा लिखते हैं कि "इससे पहले की चाउ एन लाई नेहरू के पत्र का जवाब देते, दलाई लामा भारत पलायन कर गए। इससे यह मुद्दा और भी जटिल हो गया क्योंकि चीनी सरकार भारतीय जनता के एक बड़े वर्ग द्वारा दलाई लामा के भारी स्वागत से काफी नाराज हुई। इसके लिए उन्होंने नई दिल्ली को जिम्मेदार ठहराया।"[10] इस युद्ध का परिणाम सबसे ज्यादा मनपा समाज को भुगतना पड़ा। येशे दोरजी थोंगछी ने अपने उपन्यास 'शव काटनेवाला आदमी' में मनपा समाज और संस्कृति को कथा का आधार बनाकर 1962 के भारत-चीन युद्ध की विभीषिका को भी चित्रित किया है। युद्ध के प्रति मनपा समाज के उदासीन भाव को स्पष्ट करते हुए थोंगछी लिखते हैं- "युद्ध की तैयारी देखकर सहज-सरल मनपा लोग दंग हो उठे हैं। इतने सारे सैनिकों को देखकर, सभी सैनिकों के हाथों में बंदूक, शरीर पर गोली की गठरी, एक-दूसरे को पहचानने लायक एक ही रंग की वर्दी, जूते, दूर की खबर लेने के लिए तरह-तरह के यंत्र, राशन, कपड़े आदि की आपूर्ति करने वाले हवाईजहाज, बड़े-बड़े अधिकारियों को लेकर घूमते हुए जहाँ-तहाँ उतरने वाले हेलिकाप्टर, क्या नहीं है।...इतने ताकतवर भारतीय सैनिकों को देखकर सरल मनपा लोगों को विश्वास हो गया है कि भारत के सैनिकों के साथ, रोएंदार भालू की दाढ़ी वाले सैनिकों के साथ चीनी सैनिक युद्ध जीत नहीं पायेंगे। भारत चीन से ज्यादा पराक्रमी है,...मगर निरीह मनपा लोगों की उम्मीद टूटने में ज्यादा वक्त नहीं लगा। युद्ध की तैयारी तब चरमोत्कर्ष पर थी, किसी भी समय चीन भारत पर हमला कर सकता था, उसी समय दारगे और उसके साथियों को तवांग से सिग्नल रेजिमेंट के भारी-भारी उपकरण लाद कर पांगछेन अंचल के लुमपो नामक स्थान के लिए रवाना होना पड़ा।...दारगे के गाँव में सरकारी बाबू ने आकर आदेश दिया कि गाँव के युवक-युवतियों के पाँच-छह सदस्यीय दल को सिग्नल रेजिमेंट का उपकरण लाद कर लुमपो जाना होगा। सरकारी बाबू ने एक सूची दी जिसमें जाने वालों के नाम लिखे हुए थे। उनमें दारगे, गम्बू, नावांग, जिगमे और पेमा के नाम शामिल थे।"[11]

उपन्यासकार ने मनपा संस्कृति के बहाने समाज और राजनीति का चित्रण कर एक इतिहास को सुनियोजित किया है।

चतुर्थ अध्याय **' 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास का शिल्प'** है। इस अध्याय को दो उप-अध्यायों में बांटा गया है। प्रथम उप-अध्याय **'भाषा'** है। इस उप-अध्याय में येशे दोरजी थोंगछी की भाषायी विशेषताओं के साथ-साथ अनुवाद की भाषा की विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। इस उपन्यास का सबसे सशक्त पक्ष इसकी भाषा है। इस उपन्यास की एक बड़ी विशेषता यह है कि असमिया से हिन्दी में अनुवाद होने के बाद भी इसकी रचनात्मकता सुरक्शित और सुव्यवस्थित है। अनुवादक दिनकर कुमार जी ने उपन्यास की मूल संवेदना में बदलाव नहीं आने दिया है। साथ ही उन्होंने इस बात का भी ध्यान रखा है कि वाक्यों की निरंतरता टूटने न पाए। मनपा समुदाय में प्रचलित शब्दों का प्रयोग उपन्यास के लगभग प्रत्येक पन्ने पर है, जिससे उपन्यास में स्थानीय रंगत जीवंत है। थोंगछी जी ने मनपा समुदाय का सांस्कृतिक वातावरण अपने उपन्यास में प्रस्तुत किया है। उपन्यासकार ने बीच-बीच में स्थानीय शब्दों का प्रयोग कर उपन्यास में मनपा संस्कृति को सजीव कर दिया है। मनपा जनजातियों में प्रयोग किए जाने वाले शब्दों का प्रयोग सराहनीय है। इनकी भाषा में मनपा समाज के रीति-रिवाज, परम्पराओं, त्योहारों, भोजन आदि के लिए प्रचलित मनपा शब्द शामिल हैं। रचनाकर ने स्वयं इस समुदाय में रहकर इनकी गतिविधियों को करीब से देखा व परखा है, जिसके कारण लेखक मनपा समुदाय के यथार्थ को यथार्थवादी भाषा में अभिव्यक्ति कर पाने में सफल नजर आता है।

द्वितीय उप-अध्याय **'कथा-शिल्प'** है। इस उप-अध्याय में 'शव काटनेवाला आदमी' उपन्यास के शिल्प-पक्ष पर विचार करने का प्रयास किया गया है। थोंगछी ने अपने इस उपन्यास में शिल्प का विशेष ध्यान रखा है। येशे दोरजी थोंगछी ने इस उपन्यास में फ्लैशबैक (पूर्वदीप्ति), दृश्यात्मक, परिदृश्यात्मक आदि विभिन्न कथा-प्रविधियों का इसतमाल किया है। इस उपन्यास के कई अध्याय पूर्वदीप्ति शैली में लिखे गए हैं। दारगे

नरबू, जो इस उपन्यास का मुख्य पात्र है, बार-बार पुरानी बातों को याद करता है। रिजोम्बा और उपन्यास के अन्य पात्र भी पुरानी बातों को याद करते है। इस तरह जब अतीत की घटना फ्लैशबैक शैली में अलग अलग लोगों द्वारा नरेट की जाती है तो नैरेटर के बदलने से अवलोकन बिन्दु भी बदल जाता है। अवलोकन बिन्दु के बदलने से उपन्यास में एक ही समय की कथा के अलग-अलग रूप दिखाई पड़ते हैं। दृश्यात्मक शैली में पाठक उपन्यास में घटनाओं को प्रत्यक्ष घटित होते हुए देखता और पात्रों के वार्तालाप सुनता है। मानो पाठक वहीं घटना के सामने खड़ा होकर ये सब देख रहा हो। प्रस्तुत उपन्यास के कई हिस्से इसी दृशयात्मक शैली में रचे गए हैं। परिदृश्यात्मक शैली में पाठक को कथाकार की आवाज सुनाई पड़ती है। उपन्यासकार स्वयं कथा को नैरेट करते हुए आगे बढ़ाता है। इस उपन्यास में भी थोंगछी जी उपन्यासकार के रूप में बीच-बीच में उपस्थित होते रहते हैं। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि थोंगछी जी के उपन्यासों का शिल्प सुगठित एवं सुंदर है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह उपन्यास मनपा समाज और संस्कृति को केंद्र में रखकर लिखा गया है। यद्यपि इस उपन्यास में मुख्य रूप से मनपा जनजाति के लोगों द्वारा शव को एक सौ आठ टुकड़ों में काटने की प्रथा को दर्शाया गया है, लेकिन इस क्रम में मनपा समाज को उसके पूरे ऐतिहासिक-सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने में यह उपन्यास सफल रहा है। प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर यह बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि मनपा समाज और संस्कृति को करीब से जानने-समझने में यह उपन्यास बहुत मददगार है। संभवतः मनपा समाज पर हिन्दी में उपलब्ध यह अकेला उपन्यास है। अतः इस उपन्यास का अपना ऐतिहासिक महत्व भी है।

संदर्भ:

[1] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ. 94

[2] वही, पृ. 20-21

[3] वही, पृ. 270

[4] वही, पृ. 45

[5] रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2011, पृ. 374

[6] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 74

[7] वही, पृ. 76

[8] रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद, पृ. 410

[9] एल. एन. चक्रवर्ती, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2006, पृ. 25

[10] रामचंद्र गुहा, भारत गांधी के बाद, पृ. 378

[11] येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, पृ. 104

संदर्भ ग्रंथ-सूची

आधार ग्रंथ:

1) येशे दोरजी थोंगछी, शव काटनेवाला आदमी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014

सहायक ग्रंथ:

हिन्दी पुस्तकें

1) अनुज लुगुन, आदिवासी अस्मिता: प्रभुत्व और प्रतिरोध, अनन्य प्रकाशन दिल्ली, 2015
2) अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
3) अश्विनी कुमार पंकज, प्राथमिक आदिवासी विमर्श, प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन, राँची, 2017
4) आचार्य बलदेव उपाध्याय, भारतीय धर्म और दर्शन, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी, 2000
5) आशुतोष गर्ग (अनु.), धर्म से आगे: संपूर्ण संसार के लिए नैतिकता, परम पूज्य दलाई लामा,रामकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020
6) एल. एन. चक्रवर्ती, अरुणाचल का आदिकालीन इतिहास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006
7) एस. जी. दवे, आदिवासी समाज का समाजशास्त्र, अनड़ा बुक डिपो, अहमदाबाद, 2007
8) केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी प्रतिरोध, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2016
9) केदार प्रसाद मीणा, आदिवासी: समाज, साहित्य और राजनीति, अनुज्ञा बुक्स, दिल्ली, 2016
10) गया पाण्डेय, भारतीय जनजाति संस्कृति, कन्सैप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नयी दिल्ली, 2007
11) गुलसन राय मोंगा, पूर्वोत्तर भारत दर्शन और चिंतन, आर्य प्रकाशन, दिल्ली, 2004
12) गोपाल राय, उपन्यास की संरचना, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली, 2012
13) गंगा सहाय मीणा, आदिवासी चिंतन की भूमिका, अनन्य प्रकाशन, दिल्ली, 2017
14) गंगा सहाय मीणा, आदिवासी साहित्य विमर्श, अनामिका पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 2014

15) चन्द्रमोहन अग्रवाल, भारतीय नारी विविध आयाम, भाग -2, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, उत्तर प्रदेश, 1994
16) डॉ. गणेश दास, स्वांतत्र्योत्तर कहानी में नारी के विविध रूप, अभय प्रकाशन, कानपुर, 1992
17) डॉ. जी. एन. सिंदे (संपा), लोक साहित्य: वैश्विक परिदृश्य, यशवंत महाविद्यालय, महाराष्ट्र, 2016
18) डॉ. नरेंद्र एन. व्यास, आदिवासी जीवनधारा, हिमांशु पब्लिकेशन्स, उदयपुर, 2008
19) डॉ. परमानन्द श्रीवास्तव, हिन्दी कहानी की रचना प्रक्रिया, ग्रंथ प्रकाशन, 1965
20) डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, आदिवासी विकास: एक सैद्धांतिक विवेचन, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादेमी, भोपाल, 1986
21) डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1984
22) डॉ. भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, किताब महल, इलाहाबाद, 1984
23) डॉ. राजदेव दुबे, बौद्ध साहित्य का सांस्कृतिक विमर्श, कला एवं धर्म शोध-संस्थान, वाराणसी, 2013
24) डॉ. श्याम सुन्दरदास, साहित्य लोचन, साहित्य-रत्न-माला कार्यालय, काशी, 1988
25) डॉ. शैल रस्तोगी, हिन्दी उपन्यासों में नारी, विभु प्रकाशन, साहिबाबाद, 1997
26) डॉ. सुरेन्द्र कुमार मिश्र, भारत के पूर्वोत्तर में उग्रवाद, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2007
27) डॉ. हरदयाल, हिन्दी कहानी : परंपरा और प्रगति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
28) नयना, समकालीन उपन्यास रचना और परिवेश, शुबदा प्रकाशन, 2012
29) निर्मल कुमार बोस, भारतीय आदिवासी जीवन, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नयी दिल्ली, 2013
30) पी. आर. नायडू, भारत के आदिवासी, राधा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, 1997
31) पी. आर. नायडू, भारत के आदिवासी: विकास की समस्याएँ, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2002
32) प्रो. नन्द किशोर पांडेय (संपा.), मोनपा लोक साहित्य, केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा, 2020
33) बाबुराम सक्सेना, सामान्य भाषाविज्ञान, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2010
34) बिंदु आग्रवाल, हिन्दी उपन्यासों में नारी-चित्रण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1938

35) माता प्रसाद, पूर्वोत्तर भारत के राज्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1998
36) माता प्रसाद, मनोरम भूमि अरुणाचल, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1995
37) येशे दोरजी थोंगछी, मौन होंठ मुखर हृदय, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, 2017
38) येशे दोरजी थोंगछी, सोनाम, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2009
39) रमणिका गुप्ता, आदिवासी कौन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
40) रमणिका गुप्ता (संपा), आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002
41) रामचंद्र गुहा, भारत गाँधी के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2011
42) रामचंद्र गुहा, भारत नेहरू के बाद, पेंगुइन बुक्स, हरियाणा, 2012
43) वीर भारत तलवार, झारखंड के आदिवासियों के बीच, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2012
44) वीरेंद्र परमार, अरुणाचल के आदिवासी और उसका लोक साहित्य, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2009
45) शांतिस्वरूप गुप्त, उपन्यास स्वरूप संरचना तथा शिल्प, अलंकार प्रकाशन, दिल्ली, 1980
46) हरीराम मीणा, आदिवासी दुनिया, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत, नयी दिल्ली, 2014

अंग्रेजी पुस्तकें:

1)Christoph Von Furer-Haimendrof, Highlanders of Arunachal Pradesh: Anthropological Research In North-East India, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1982
2)Dr. Bibhash Dhar, Arunachal Pradesh The Dynamic Monpas of Tawang: Tradition And Transformation, Lakshi Publishers And Distributors, New Delhi, 2018
3)Dr. M.C. Arunkumar, The Tribes of Arunachal Pradesh, Maxford Books, Delhi, 2012
4)Henry Lalmawizuala, Globalization and Ethnic Identity, Scientific Book Centre, Guwahati, 2014

5)Juri Dutta, Ethnicity In The Fiction of Lummer Dai and Yeshe Dorjee Thongchi: A New Historicist Approach, Adhyayan Publishers & Distributors, New Delhi, 2012

6)Kazuharu Mizuno, Himalayan Nature and Tibetan Buddhist culture in Arunachal Pradesh, India, International Perspectives in Geography AJG Library 6, Springer, Japan, 2015

7) Neeru Nanda, Tawang The Land of Mon, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1982

8)Niranjan Sarkar, Buddhism Among The Monpas And Sherdukpens, Directorate of Research Government of Arunachal Pradesh, Shillong, 1980

9)R.R.P. Sharma, The Sherdukpens, Directorate of Research, Govt. of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1988

10)S. Dutta Choudhury (Editor), Gazetteer of India Arunachal Pradesh: East Kameng West Kameng And Tawang Districts, Government of Arunachal Pradesh, 1996

11)Verrier Elwin, A Philosophy For Nefa, Directorate of Research, Govt. of Arunachal Pradesh, Itanagar, 2014

12)Verrier Elwin, Democracy In Nefa, Government of Arunachal Pradesh, Itanagar, 1965

13)Verrier Elwin, The Art of The North-East Frontier of India, North-East Frontier Agency, Shillong, 1959

कोश

1) कालिका प्रसाद (संपा.), बृहत हिन्दी कोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1974

2) सत्यप्रकाश (संपा.), मानक अँग्रेजी हिन्दी कोश, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1971

पत्रिकाएँ

1) जनसत्ता, 14 सितंबर, 2014
2) पक्षधर पत्रिका, संपादक- विनोद तिवारी, वर्ष-12, सन्युक्तांक: 25-26, जुलाई-दिसंबर, 2018 - जनवरी-जून, 2019
3) पुस्तक वार्ता, भारत भारद्वाज (संपा.), महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा, मार्च-अप्रैल, 2015
4) मधुमती (पत्रिका), ब्रजरतन जोशी (संपा.), राजस्थान, साहित्य अकादेमी, उदयपुर, नवम्बर, 2020
5) राजभाषा ज्योति (पत्रिका), अंक- 38, अक्टूबर, 2020 - मार्च, 2021
6) Indian Journal of Traditional knowledge, Vol. b 6(1), January, 2007
7) Int. J. Adv. Res 7 (7), july 2019